प्राकृत भारती पुष्प - १०१

जैन कथा साहित्य :
विविध रूपों में

लेखक
डॉ. जगदीशचन्द्र जैन

प्रकाशक
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्रोत

देवेन्द्रराज मेहता
सचिव,
प्राकृत भारती अकादमी,
३८२६, मोतीसिंह भोमियो का रास्ता,
जयपुर - ३०२ ००३.

प्रथम संस्करण : सप्टेंबर १९९४

मूल्य : एक सौ रुपये

मुद्रक :-
मानकरी मुद्रणालय
२ ए, विमल उद्योग भवन,
टाईकल वाडी, माहीम, बम्बई ४०० ०१६.

प्रकाशकीय

हमें हार्दिक प्रसन्नता है कि हम डॉक्टर जगदीशचन्द्र जैन की "जैन कथा साहित्य : विविध रूपो मे" पुस्तक प्राकृत भारती के १०१ पुष्प रूप में प्रकाशित कर रहे हैं । डॉ. जैन हमारे देश के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त बहुश्रुत विद्वान हैं । देश-विदेश मे भ्रमण कर आपने अपने व्याख्यानो द्वारा भारतीय संस्कृति को उजागर किया है ।

साहित्य की विधाओ मे कथा-साहित्य का विशिष्ट स्थान रहा है । जो बात हम आमने-सामने बैठकर नही कह सकते, उसका सर्वश्रेष्ठ माध्यम है कथा-कहानी ।

भारतीय कथा-साहित्य का विश्व कथा-साहित्य को अभूतपूर्व योगदान रहा है । भारत की कितनी ही कथा-कहानियां विश्व-साहित्य की कथा-कहानियो का एक अंग बनकर रह गयी हैं । अवश्य ही भारत ने भी विश्व साहित्य की सरस कहानियो को आत्मसात् करने मे संकोच नहीं किया है ।

जैन कथा-साहित्य का भारतीय कथा-साहित्य को असाधारण योगदान रहा है । जैन श्रमण अपने भ्रमण-काल मे जहां-कहीं कोई सुन्दर श्रेष्ठ रचना पाते, उसे वे सजा-धजाकर अपनी बना लेते । महाकवि गुणाढ्य की अभूतपूर्व कृति वर्तमान मे अनुपलब्ध वड्ड्कहा (बडी कथा : बृहत्कथा) का संघदास गणि वाचक द्वारा वसुदेवहिंडी के रूप मे आत्मसात् करना इसका ज्वलन्त उदाहरण है । और, विशेषता यह रही कि वसुदेवहिंडी के पढ़ने से किसी भी स्थल पर यह भान नहीं होता कि यह रचना स्वय लेखक की नही है । वेताल-पंचविंशतिका, सिहासन-द्वात्रिंशिका, शुक-सप्तति, भरटकद्वात्रिंशिका, हितोपदेश, पंचतंत्र आदि सुप्रसिद्ध रचनाओं का भी जैन-विद्वानो ने खुले दिल से उपयोग किया । आखिर विद्या किसी व्यक्ति या धर्म-विशेष की सम्पत्ति नही होती, कोई भी उसका सदुपयोग करने के लिए स्वतंत्र है ।

प्रस्तुत है "जैन कथा साहित्य : विविध रूपो मे" । इस संकलन मे धार्मिक एवं सामाजिक कहानियो के अतिरिक्त कितनी ही कहानियां धूर्तो, विटो, छद्मवेषी

कपटी जनों, वार-वनिताओं और कुट्टिनियों आदि से संबंधित हैं जो निश्चय ही बोधप्रद हैं और हमें सन्मार्ग के प्रति प्रेरित करती हैं, कपटी और धूर्त मायावी व्यक्तियों से सावधान रहने की सीख देती हैं ।

संकलित कहानियों में कितनी ही कहानियां आज भी बीरबल, गोनू झा आदि के नाम से जन-साधारण में प्रचलित हैं ।

आशा है जैन-कथाओं का यह संकलन पाठकों को रुचिकर लगेगा और जीवन जीने के लिए उपयोगी सिद्ध होगा ।

हमारे अनुरोध पर डॉ. जैन ने अपनी रचना को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की, एतदर्थ हम उनके आभारी हैं ।

महोपाध्याय विनय सागर,	देवेन्द्रराज मेहता
निदेशक,	सचिव,
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर	प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

डॉ. जगदीशचन्द्रजी की उक्त कृति छपने के पूर्व उनका स्वर्गवास हो गया । अतः उनकी अनुपस्थिति में उनके परामर्शानुसार स्व. श्रीमती कमलश्री जैन को सादर समर्पित ।

प्रास्ताविक

इसे एक संयोग ही समझिए कि श्री देवेन्द्रराज मेहता बम्बई स्थित भारतीय रिजर्व बैंक में उप-गवर्नर नियुक्त होकर आये । इन्हीं दिनों श्री मेहता और मुझे अहिंसा जैन विद्यापीठ की ओर से जून, १९९४ में सोजत सिटी (राजस्थान) में होने वाली संगोष्ठी मे सम्मिलित होने का आमंत्रण मिला । मुझसे अनुरोध किया गया कि चूंकि श्री मेहता के भी गोष्ठी में सम्मिलित होने की संभावना है, संभवतया मैं उनसे सम्पर्क कर लूं । देखा जाय तो व्यस्तता के कारण संगोष्ठी मे न वे सम्मिलित हो सके और न मैं ।

लेकिन इसमे एक लाभ अवश्य हुआ कि हम दोनों का दीर्घकालीन परिचय सजग हो उठा । मेहताजी की अभूतपूर्व सक्रियता के संबंध में दो राय नही है । इसी पुरजोश परिचय का परिणाम है "जैन कथा साहित्य : विविध रूपों में" । उनके और भी प्रस्ताव हैं । सचमुच मैं उनका हृदय से आभारी हूं ।

इस प्रसंग पर दिल्ली उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री मांगीलाल जैन का मैं आभारी हूं जिन्होंने अपने अमूल्य समय मे से समय निकाल कर मेरी पांडुलिपि का अवलोकन ही नहीं किया, उसकी विषयवस्तु को सराहा भी ।

अपने पुत्र अनिल जैन का भी मैं आभारी हूं जो मुझे बम्बई जैसी विशाल नगरी में लिखने-पढ़ने के लिए सदा प्रोत्साहित करता रहा । वर्तमान मे रुग्ण-शैया पर आसीन मेरी पत्नी श्रीमती कमलश्री का यदि मनोबल प्राप्त न होता तो मेरे लिए कुछ भी कर पाना संभव न था । इन सभी का मैं हृदय से आभार मानता हूं ।

१५ जुलाई, १९९४ - जगदीशचन्द्र जैन

विषय-सूची

* * *

कथा का महत्त्व

भारत प्राचीन काल से ही कथा-कहानियों का केन्द्र रहा है । यहां की कितनी ही कहानियों ने अपनी लोकप्रियता के कारण दूर-दूर तक विदेशों की यात्रा की है । उष्णता-प्रधान इस देश में स्वाभाविक रूप में सार्वजनिक स्थानों मे एकत्रित हुए लोग अपनी कहानियो, पहेलियो, प्रश्नोत्तरो और चुटकलों आदि द्वारा लोकरंजन करते रहे है । छोटे-बड़े परिवारो मे यह भूमिका वड़ी-बूढ़ी नानी या दादी द्वारा निभायी जाती रही है । औपपातिक सूत्र मे ऋद्धि और समृद्धि से पूर्ण चंपा नगरी का वर्णन करते समय कहा गया है कि वहां के पूर्णभद्र चैत्य मे कथावाचको, नट-नर्तको, वाजीगरो, मल्लो, विदूषको, गायको, नजूमियो, वीणावादकों आदि की भीड़ लगी रहती थी जो अपने-अपने करतब दिखाकर जन-समूह का मनोरंजन किया करते थे । इससे सामाजिक जीवन मे कथावाचको के महत्त्व का अनुमान लगाया जा सकता है ।

राजा एवं साधन-संपन्न लोगो को कहानी सुनने का शौक था । नगर मे डोडी पिटवा कर कहानी-स्पर्धाओ का आयोजन किया जाता । इस आयोजन में भाग लेने के लिए लोग दूर-दूर से आते और मुंह-मांगा पुरस्कार लेकर वापिस लौटते । कितनी ही वार राजा ऐसी प्रतिभाशाली युवती से विवाह करता जो कहानी कला में निष्णात होती । कहने की आवश्यकता नही कि राजा की चहेती यह रानी अंत:पुर की अन्य रानियों की ईर्ष्या का पात्र वन जाती । मानव समाज का ही नही, कहानी के विकास मे पशु-पक्षियों का भी वडा योगदान रहा है । शुक-सारिका का नाम प्राचीन काल से कथा-कहानियों के साथ जुड़ा चला आता है । शुकसप्तति सत्तर लोकप्रिय कहानियो का एक सरस संग्रह है, ये कहानियां शुक के द्वारा कही गयी है । कहते है कि सेठ हरिदत्त का पुत्र कुमार्गगामी था और अपने पिता के वहुत कहने-सुनने पर भी उनकी सीख नही मानता था । सेठजी के परम मित्र नीतिशास्त्र के पंडित त्रिविक्रम व्राह्मण को जव इस वात का पता लगा तो वह शुक-सारिका के जोड़े को लेकर सेठजी के घर पहुंचा । और यह जानकर सव आश्चर्यचकित रह गये कि कुछ समय वाद शुक

की कहानियों से प्रभावित हो सेठजी का पुत्र नीति-नियम के पालने में तत्पर हो गया । भारत के लोकगीतों में भी शुक को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । एक प्रचलित गोंड परंपरा के अनुसार, एक बार की बात है कि शिवजी उनके बीच हस्तक्षेप करने वाले व्यक्ति के मार देने के संबंध में अमरत्व और सृष्टि का आख्यान सुना रहे थे । इस बीच तोते ने व्यासजी के उदर में प्रवेश कर शरण प्राप्त की । तत्पश्चात् वह शुक के रूप में बाहर आया । ब्राह्मण परंपरा में शुक को शुकी के रूप में मान्यता प्रदान कर उसे शुकों की जननी कहा है; उसे कश्यप ऋषि की पुत्री अथवा पत्नी बताया गया है । लोककथाओं में तोते को चतुर्वेदों का जानकर कहा है । उद्योतन सूरि कृत कुवलयमाला में ऐसे अद्भुत तोते का उल्लेख है जो वर्णमाला, नृत्य और धनुर्विद्या में निष्णात था, और हस्ति, वृषभ, कुक्कुट, स्त्री तथा पुरुष के लक्षणों को पढ़ सकता था ।

लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पुरानी बात है । दक्षिण देशवासी किसी राजा के तीन पुत्र थे । तीनों ही को पढ़ने-लिखने में रुचि न थी । राजा ने अपने मंत्रियों को बुलाकर उनसे मंत्रणा की । एक मंत्री ने कहा, "महाराज, बारह वर्ष में व्याकरण पढ़ा जाता है, उसके बाद मनु का धर्मशास्त्र, फिर चाणक्य का अर्थशास्त्र और तब कहीं जाकर वात्स्यायन का कामशास्त्र समझ में आता है । उसके बाद ही ज्ञान की प्राप्ति समझनी चाहिए ।"

यह सुनकर दूसरे मंत्री ने निवेदन किया, "महाराज, यह बात ठीक है । यह जीवन दीर्घकाल तक टिकने वाला नहीं और शास्त्रों का ज्ञान विशाल है । ऐसी हालत में राजपुत्रों को नीति-कुशल बनाने के लिए कोई ऐसा शास्त्र पढ़ाना चाहिए जिससे अल्पकाल में ही बोध हो सके ।"

तत्पश्चात् राजा ने नगर-भर में डौंडी पिटवा दी कि जो कोई उसके पुत्रों को नीतिशास्त्र में पुरस्कार बना देगा, वह उसके आधे राज्य का सहभागी होगा । डौंडी सुनकर नगर के किसी वयोवृद्ध विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण ने राज-दरबार में उपस्थित हो निवेदन किया, "महाराज, धन-दौलत की मुझे दरकार नहीं, लेकिन यदि मैं कुछ महीने के अंदर राजकुमारों को नीतिशास्त्र में निष्णात न बना दूं तो मेरा नाम विष्णुशर्मा नहीं ।" तत्पश्चात् शुभ मुहूर्त में पंडितजी ने अध्यापन का कार्य आरंभ कर दिया ।

उन्होंने एक के बाद एक पशु-पक्षियों की रोचक कहानियां राजपुत्रों को सुनाई । आगे चलकर इन सरस कहानियों को पाच भागों (तंत्र) में संकलित किया गया जिससे इस सग्रह का नाम पंचतत्र पडा । इन कहानियों को अरब, फारस, यूनान और यूरोप आदि देशों मे पहुचने मे देर न लगी और दुनिया की अनेक भाषाओ में इनके अनुवाद गये ।

कथा-कहानी मानवीय जीवन के विकास के लिए बहुत आवश्यक है । कथा-कहानी का श्रवण या पठन जीवन मे रस का संचार करता है । कहानी सुनकर हमारे अचेतन मन की ग्रंथियां टूटकर बिखर जाती है और हमे ऐसा लगने लगता है कि कुछ अभूतपूर्व वस्तु की प्राप्ति हो गयी है । हमे अपनी असंगतियो एवं विषमताओं से छुटकारा मिल जाता है । यूनान के विचारक अरस्तू के शब्दों में, कहानी सुनकर हमारे भाववेशो का विरेचन अथवा शुद्धीकरण हो जाता है जिससे हम सामर्थ्य प्राप्त कर सुख का अनुभव करते हैं । व्यावहारिक जीवन में कोई सरस लोकगीत या लोककथा सुनकर हम प्रफुल्लित हो उठते है और हमारे मन की नैराश्य भावना दूर हो जाती है । राजा श्रेणिक और सोमशर्मा ब्राह्मण की कथा (देखिए पृ. ६४-५) से पता चलता है कि अनुकूल कथा-कहानी सुनने से *मार्ग की थकान* दूर हो जाती है और मानसिक शाति मिलती है ।

कथा-कहानी के श्रवण को पुण्योपार्जन और पापनाशन मे कारण बताया है । दिगंबर जैन विद्वान् रामचन्द्र मुमुक्षु कृत पुण्यास्रव कथाकोश का अर्थ ही यह है कि इस रचना मे वर्णित कथा-कहानियो के पठन-पाठन से पुण्य कर्म का आस्रव और पाप कर्मों का नाश होता है । सुप्रसिद्ध वेतालपंचविंशति (कहानी २५, पृ. २२२) मे कहा है : "यहां संग्रहीत कहानियों के एक अंश के कथन अथवा श्रवण से इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है; कहानी सुनने वाला और सुनाने वाला दोनो ही पाप से छूट जाते हैं तथा अनिष्ट देवी-देवताओं की बाधा उन्हे नहीं सताती ।"

मलधारि राजशेखर सूरि का सुप्रसिद्ध विनोदकथासंग्रह (अथवा कथाकोश) अनेक सरस लौकिक कथा-कहानियो का संग्रह है । यहां कमल श्रेष्ठी की कहानी आती है । कमल ने अपने कुमार्गगामी पुत्र को सुमार्ग पर लाने के लिए अनेक प्रयत्न

किये । अत में वह अपने पुत्र को लेकर किसी जैन गुरु के पास पहुंचा । कमल ने गुरुजी से निवेदन किया कि यदि वे किसी तरह उसके पुत्र को सन्मार्ग पर ला सकें तो वह जन्मभर उनका उपकार न भूलेगा । कमलश्रेष्ठी का पुत्र जैन-गुरु का उपदेश सुनने लगा । लेकिन गुरुजी के व्याख्यान देते हुए, ऊपर-नीचे जाने वाली उनके गले की घंटी उसके मन मे कुतूहल पैदा करती, और वह व्याख्यान सुनने की बजाय उनके गले की घंटी के क्रम को गिनता रहता । कमलश्रेष्ठी ने अपने पुत्र को किसी दूसरे आचार्य के सुपुर्द किया । यहां भी उसके पुत्र को आचार्य का नीरस व्याख्यान आकृष्ट न कर सका । वह अपने बिल से निकलकर बाहर जाने वाली चींटियों की गिनती करता रहता । श्रेष्ठी ने अपने पुत्र को तीसरे आचार्य के सुपुर्द किया । मनोविज्ञान के जानकार कुशल वक्ता इस आचार्य ने अपने व्याख्यान मे श्रृंगार रस का पुट देकर उसे आकर्षक रूप मे प्रस्तुत किया, और उसके बाद क्रमशः उसमें धर्मकथा का समावेश कर दिया । इस व्याख्यान ने कमलश्रेष्ठी के पुत्र को प्रभावित किया । कहने का तात्पर्य इतना ही कि सामान्यतया जनसमूह की रुचि जिस विषय की ओर नही होती, उस रुचि को कथा-कहानी के माध्यम से पैदा किया जा सकता है । संस्कृत मे तंत्राख्यान, पंचतंत्र, हितोपदेश, पंचाख्यान आदि एक-से-एक बढ़कर कितने ही सरस आख्यान मौजूद हैं जिनमे कथा के छल से नीति-न्याय का प्रतिपादन किया गया है (कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तिदिह कथ्यते) ।

कथा अन्य प्रकार से भी उपयोगी है । जीवन में अनेक क्षण ऐसे उपस्थित होते हैं जबकि हम अपनी बात को साफ-साफ कहने में संकोच करते हैं, लेकिन कथा अथवा सूक्ति आदि के माध्यम से यह बात परोक्ष रूप से प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की जा सकती है । उदाहरणार्थ, वृद्धजनों अथवा सामान्य व्यक्तियों के उद्बोधन के लिए कथा को श्रेष्ठ माध्यम बनाया जा सकता है । राजा का मंत्री जब राजा को किसी आवश्यक तथ्य से प्रत्यक्ष वार्तालाप द्वारा अवगत कराने में असफल रहता है तो वह लौकिक कथा-कहानियों के माध्यम से अपना प्रयोजन सिद्ध करता हुआ देखा जाता है । कुटिल अथवा दुष्ट जनो से निपटने के लिए भी हमे इसी प्रकार की व्यंग्यपूर्ण कथा-कहानियों का अवलम्बन लेना होता है ।

इन्हीं सब बातो को ध्यान में रखकर जैन विद्वानो ने लोकसंग्रह की भावना को प्रमुखता देते हुए धर्म और नीति संबंधी अनेकानेक सरस आख्यानो की रचना की ।

कथा के प्रकार

मुख्यतया कथा के तीन भेद किये गये है : धर्मकथा, अर्थकथा और कामकथा । धर्मकथा मे धर्म और नीति संबंधी, अर्थकथा मे अर्थोपार्जन सबंधी और कामकथा में प्रेम तथा श्रृंगार संबंधी कथाओ की प्रधानता रहती है । जीवन को सफल बनाने मे तीनों ही कथाओ का योगदान रहा है ।

जनसामान्य तक पहुचाने के लिए जैन-आचार्यो ने जनसंपर्क को प्रमुख बताया है । अधिकाधिक मात्रा मे जनसपर्क स्थापित करने के लिए उन्होने बालक, स्त्री, वृद्ध और अपढ़ लोगों को जनबोली मे उपदेश दिया । स्थानीय बोली का ज्ञान प्राप्त करने के अतिरिक्त, जैन श्रमण किसी अभिनव प्रदेश मे पहुंचकर जनपद की परीक्षा करते । वे वहां के रीति-रिवाजो, धान्य उत्पत्ति के तरीकों तथा प्रचलित कथा-कहानियो का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझते । 'लोको हि अभिनवप्रिय:' (लोक अभिनव प्रिय होता है) इस उक्ति के अनुसार, जनसामान्य की रुचि पुरातनता की ओर से हटकर नूतनता की ओर उन्मुख होती है । कथा के संदर्भ में पौराणिक देवी-देवताओं एवं राम-रावण आदि संबंधी अतिशयोक्तिपूर्ण पौराणिक आख्यानो के प्रति तर्क-प्रधान बुद्धिजीवी वर्ग की रुचि घटती जा रही थी ।[१] ऐसी स्थिति मे जैन-विद्वानो ने अपने कथा-साहित्य मे यथार्थवादी धारा का समावेश कर उसे एक अभिनव दृष्टिकोण प्रदान किया । वाल्मीकि द्वारा प्रतिपादित रामायण की कथा को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा गया । चरितनायक का जो दर्जा अब तक राजा-महाराजाओं, वीर योद्धाओं, प्रतिभा-संपन्न विद्वानो आदि के लिए सुरक्षित था, वह अब प्रताड़ित

---

१ - १४ वी शताब्दी के प्रबंधचिन्तामणिकार मेरुतुंग ने लिखा है :

भृशं श्रुतत्वान्न कथाः पुराणाः
प्रीणंति चेतांसि तथा बुधानाम् ।

- पौराणिक कथाओं के पुन: पुन: श्रवण करने से पंडितजनों का चित्त प्रसन्न नहीं होता ।

सती-साध्वियो, श्रावक-श्राविकाओ, सच्चरित्र वणिकों, सार्थवाहपुत्रों, शोषित कर्मकरो, दास-दासियो आदि सामान्य जन को दिया जाने लगा । पदयात्रा द्वारा ग्रामानुग्राम विहार करते हुए ये श्रमण जहां कहीं भी पहुंचते, लोगो की भीड़ जमा हो जाती, शंका-समाधान और प्रश्नों की झड़ी लग जाती । कोई आत्मा-परमात्मा के विषय मे, कोई परलोक के अस्तित्व के विषय में, और कोई आचार-विचार के विषय मे अपनी जिज्ञासा व्यक्त करता । इन जिज्ञासाओ का समाधान जैन श्रमण अनेक रोचक कथा-कहानियो, उदाहरणो, उपमाओ, दृष्टान्तों और पहेलियों के माध्यम से प्रस्तुत करते ।

उक्त तीन प्रकार की कथाओ के अतिरिक्त, उद्योतन सूरि ने अपनी कुवलयमाला मे संकीर्ण अर्थात् मिश्र कथा का भी उल्लेख किया है । इसमे समस्त कथाओं के लक्षण विद्यमान रहते हैं । संकीर्ण कथा मे कहीं कुतूहल-वश, कहीं पर-वचन से प्रेरित हो, कहीं संस्कृत में, कहीं अपभ्रंश मे, कहीं द्राविड़ी में, कहीं पैशाची मे रचना की जाती है । यह रचना कथा के समस्त अंगो से संपन्न श्रृंगार रस से मनोहर, सुरचित अंग से विभूषित और सर्व कलागम से सुसंपन्न रहती है ।[1] ईसवी सन् की आठवीं शताब्दी के कवि कौतुहल ने अपनी लीलावईकहा मे कथाओ के प्रकारो का उल्लेख करते हुए कहा है : "यहा शब्दशास्त्र (व्याकरण) को महत्व नहीं दिया गया है; यहा उसी कथा को श्रेष्ठ बताया गया है जिससे अकदर्थित हृदय के द्वारा स्पष्ट अर्थ की उपलब्धि हो सके ।"[2]

---

1 - कोऊहलेण कत्थइ पर - वयण - वसेण सक्कय-णिबद्धा ।
किंचि अवब्भंस - कया दाविय-पेसाय-भासिल्ला ॥
सव्व-कहा - गुण - जुत्ता सिंगार - मणोहरा सुरइयंगी ।
सव्व - कलागम - सुहया संकिण्ण - कह त्ति णायव्वा ॥ - ७, पृ ४

2 - भणियं च पियअमाए पियअम किं तेण सद्दसत्थेण ।
जेण सुहासिय - मग्गो भग्गो अम्हारिस जणस्स ॥
उवलब्भइ जेण फुडं अत्थो अकयत्थिएण हियएण ।
सो चेय परो सद्दो णिच्चो किं लक्खणेण ॥ ३९-४०
-प्रियतमा ने कहा है प्रियतम, उस शब्दशास्त्र से क्या प्रयोजन जिससे हमारे जैसे जनों का सुभाषित मार्ग भग्न हो जाये । जिससे अकदर्थित हृदय के द्वारा स्पष्ट अर्थ की उपलब्धि हो, वही हमारे लिए परम एवं नित्य शब्द है, लक्षणशास्त्र का हमें क्या करना है ?

कथाओ मे धर्मकथा को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है । यह कथा स्निग्ध, मधुर, हृदयस्पर्शी, आह्लादकारी और पथ्यस्वरूप होनी चाहिए । धर्मकथा चार प्रकार की बतायी गयी है : आक्षेपणी (मनोनुकूल विचित्र और अपूर्व अर्थवाली), विक्षेपिणी (अनुकूल प्रतीत होने वाली, अनीतिपरक कथाओ से मन को हटाकर प्रतिकूल लगने वाली, नीतिपरक कथाओ की ओर प्रेरित करने वाली), सवेग-जननी (संवेग अर्थात् वोध पैदा करने खाली) और निर्वेद-जननी (वैराग्य पैदा करने वाली) ।[१]

धर्म का अर्थ है न्याय, नीति, सदाचरण । धर्मकथा अर्थात् नीतिपरक कथा जो समाज को न्याय एव नीति की ओर प्रेरित करे । सत्कर्म में प्रवृत्त और असत्कर्म से निवृत्त, यही धर्म-देशना का लक्ष्य रहा है । हम अपने दुख के समान ही दूसरो के दुख का अनुभव करे; सवके प्रति मैत्री भावना का उदय हो, गुणीजनो को देखकर मन प्रमुदित हो, दीन-दुखियो के प्रति करुणा भाव जागृत हो और विपरीत मनोवृत्ति वाले जनो के प्रति माध्यस्थ भाव आन्दोलित हो, यही धार्मिक कथा-कहानियो का उद्देश्य रहा है । इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए दान, शील, तप और सद्भाव का प्रतिपादन करते हुए संयम, तप, त्याग और वैराग्य पर जोर दिया गया है ।

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही संप्रदायों के विद्वानो ने धर्म कथानको मे विविध दृष्टान्तो, उदाहरणो, रूपको, मनोरंजक सवादो, धूर्तों के आख्यानो, पशु-पक्षियो की कहानियां, सुभाषितो और उक्तियो आदि का समावेश कर कथा-साहित्य को खूब ही समृद्ध बनाया है । ईसवी सन् की आठवी शताब्दी के विद्वान् कुवलयमाला के रचयिता उद्योतन सूरि ने अपनी कथा की नववधू से तुलना करते हुए, उसे अलकार सहित, सुभग, ललित पदावलि से विभूषित, मृदु और मंजुल संलापों से युक्त, सहृदय जनों के मन मे हर्षोल्लास उत्पन्न करने वाली कहा है ।[२] जैन विद्वानो ने केवल प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश में ही लोकोपयोगी कथा-साहित्य की रचना नही की, अपितु पुरानी हिन्दी, पुरानी गुजराती, राजस्थानी, तथा कन्नड़ और तमिल भाषाओं के भंडार

---

१ - भगवती आराधना, पृ ६५२-५७

२ - सालंकाला सुहया ललियपया मउय-मंजुल-संलावा ।
सहियाण देइ हरिसं उव्वूढा णववहू चेव ॥

हाथ धोना पड़ेगा ।" लेकिन यह सुनकर महाजनक ज़रा भी विचलित न हुआ । उसने उत्तर दिया, "हे देवता, तुम ऐसा क्यों कह रहे हो ? यदि मुझे प्राण त्याग करने की भी नौबत आ जाय तो मैं कम-से-कम लोगों की निंदा का पात्र होने से तो बच जाऊंगा । लेकिन नहीं, जब तक मुझमें शक्ति मौजूद है, मैं समुद्र पार करने के प्रयत्न को न छोड़ूंगा ।" इस प्रकार के कितने ही आख्यान बौद्ध और जैन-कथा ग्रंथों में आते हैं जिससे भारत के व्यापारियों के शौर्य और साहस का परिचय मिलता है ।

उद्योतन सूरि की कुवलयमाला में स्थाणु और मायादित्य नाम के दो मित्रों का संवाद देखिए :

स्थाणु - मित्र, धर्म, अर्थ और काम, इन तीन पुरुषार्थों में से जिसमें एक भी नहीं, उसका जीवन जड़ के समान निकृष्ट है । धर्म हम लोगों में है नहीं, क्योंकि हम दान और शील से वंचित हैं । अर्थ भी कहीं दिखाई नहीं पड़ता । जब अर्थ ही नहीं तो काम कहां से हो सकता है ? ऐसी दशा में हे मित्र, हमारा जीवन तराजू के अग्रभाग में अधर में लटका हुआ है, अतएव हम लोग क्यों न कहीं चलकर अर्थ का उपार्जन करें; अर्थ से ही शेष पुरुषार्थों की सिद्धि हो सकती है ।

मायादित्य - तो फिर मित्र, बनारस के लिए क्यों न प्रस्थान किया जाये ? वहां पहुंचकर हम जूआ खेल सकेंगे, सेंध लगा सकेंगे, ताले तोड़ सकेंगे, राहगीरों को लूट सकेंगे, गांठ काट सकेंगे, कूट-कपट कर सकेंगे और ठग विद्या से धन कमा सकेंगे ।

स्थाणु - नहीं-नहीं, ऐसा करना ठीक नहीं । देखो, निर्दोष रूप से धनोपार्जन के उपाय हैं : देशगमन, मित्रता, राजसेवा, मान-अपमान में कुशलता, धातुवाद, सुवर्णसिद्धि, मंत्रसिद्धि, देवाराधन, समुद्रयात्रा, पहाड़ की खान खोदना, वनिज-व्यापार, विविध कर्म और अनेक प्रकार की शिल्पविद्या ।

तत्पश्चात् दोनों मित्र अनेक पर्वत और नदी-नालों से संकीर्ण वन-अटवियों को लांघ प्रतिष्ठान नगर में पहुंचे । वहां बहुत-सा धन उपार्जन कर स्वदेश लौटे ।

जैसे धर्मशास्त्र को लेकर भारतीय विद्वानो ने अनेक सारगर्भित ग्रंथो की रचना की हैं, उसी प्रकार अर्थ और काम संबंधी ग्रंथ भी पर्याप्त संख्या में लिखे गये है । कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे लिखा है : "अर्थ एव प्रधान इति कौटिल्यः । अर्थमूलो हि धर्मकामाविति" (१.७. ६-७), अर्थात् कौटिल्य अर्थ को ही प्रमुख मानता है; तथा अर्थ ही धर्म और काम का मूल है । इससे जीवन मे अर्थ का प्राधान्य सूचित होता है । उल्लेखनीय है कि ईसवी सन् की ११ वी शताब्दी के सुप्रसिद्ध दिगंबर विद्वान सोमदेव सूरि ने अपने नीतिवाक्यामृत के आरंभ मे राज्य को ही नमस्कार किया है, तीर्थंकार भगवान को नही : "अथ धर्मार्थकामफलाय राज्याय नमः" अर्थात् धर्म, अर्थ और काम का फल देने वाले राज्य को नमस्कार है (धर्मसमुद्देश, पृ.७) । आगे चलकर अर्थसमुद्देश नामक दूसरे प्रकरण में उन्होंने अर्थ को समस्त प्रयोजनो का साधक स्वीकार किया है : "यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः सोऽर्थः" (२.१) अर्थात् जिससे सर्व प्रयोजन की सिद्धि हो, वह अर्थ है । उनके कथनानुसार जो अर्थानुबंध से (अलब्ध धन का लाभ, लब्ध धन की रक्षा तथा रक्षित धन की वृद्धि करने को अर्थानुबंध कहा गया है) अर्थ का सेवन करता है, वह अर्थ का भाजन होता है (२.२-३) । अर्थ की महत्ता स्वीकार करते हुए व्यवहारसमुद्देश (२७) मे लेखक ने लिखा है : "न दारिद्र्यात्परं पुरुषस्य लांछनमस्ति यत्संगेन सर्वे गुणा निष्फलतां यान्ति"; अर्थात् दारिद्र्य से बढकर पुरुष का अन्य कोई लांछन नही है जिसके कारण समस्त गुण निष्फल हो जाते है (२७, ४२), तथा "धनिनो यतयो पि चाटुकाराः" (२७.४४) अर्थात् यतिगण भी धनी लोगो की चाटुकारी करते है । इस प्रसग पर टीकाकार ने वल्लभदेव के नाम से धन की महत्ता के द्योतक श्लोक उद्धृत किये है ।

सुप्रसिद्ध पंचतंत्र का मित्रभेद नामक प्रथम तंत्र महिलारोप्य नगर के निवासी वर्धमान नामक वणिक् पुत्र की कथा से आरंभ होता है जिसमे निम्न रूप मे धन की सार्थकता व्यक्त की गयी है : "कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो धन के बिना सिद्ध न होती हो, अतएव मतिमान पुरुष यत्नपूर्वक अर्थ का साधन करते हैं । जिसके पास अर्थ है, उसी के मित्र होते है, उसी के भाई-बंधु होते है और जिसके पास अर्थ है वही पुरुष कहा जाता है और वही पंडित भी है । धन होने पर जो पूजनीय नही, उसकी पूजा होने

लगती है, जो अगम्य है उसके पास लोग जाने लगते हैं, जो वन्दनीय नहीं, वह वन्दनीय हो जाता है — यह सब धन का ही प्रताप है । धन होने से उम्र बीत जाने पर भी लोग तरुण कहे जाते हैं तथा धनहीन तरुणों को भी वृद्ध समझा जाता है ।[1]

संभवतः जैन विद्वानों ने अर्थकथा के माध्यम से धनार्जन करने पर जोर नहीं दिया, धन का प्रयोजन धर्म की प्राप्ति बताया है । धनार्जन जीवन की सफलता के लिए उपयोगी है इसलिए अर्थकथा को प्रधानता दी गई है । श्वेतांबरीय आगम ग्रंथो में अत्थसत्थ (अर्थशास्त्र) को रामायण, महाभारत, वैशिक, बुद्धशासन, कपिल, लोकायत और पतंजलि आदि के साथ लौकिक शास्त्रों में गिना गया है । इसके अलावा, वसुदेवहिंडि, द्रोणाचार्यकृत (ईसा की १२ वीं शताब्दी) ओघनिर्युक्ति टीका, और पादलिप्तसूरि कृत तरंगवईकहा पर आधारित नेमिचन्द्र गणि की तरंगलोला में अत्थसत्थ से उद्धरण दिये गये हैं जिससे प्राकृत में अत्थसत्थ होने का अनुमान किया जाता है । हरिभद्रसूरि (समराइच्चकहा आदि ग्रंथों के कर्ता से भिन्न) ने अपने धुत्तक्खाण में खंडपाणा को अत्थसत्थ की रचयित्री बताया है । यह भी ध्यान देने योग्य है कि जैसे चाणक्य ने सम्राट् चन्द्रगुप्त के हितार्थ अर्थशास्त्र की रचना की, उसी प्रकार राजा महेन्द्र के हितार्थ सोमदेवसूरि ने चाणक्य आदि के ग्रंथों के आधार से नीतिवाक्यामृत की तथा हेमचन्द्राचार्य ने गुजरात के राजा कुमारपाल के लिए लघु अर्हन्नीति की रचना की ।[2]

---

१ - न हि तद् विद्यते किंचिद् यदर्थेन न सिध्यति ।
यत्नेन मतिमांस्तस्मादर्थमेकं प्रसाधयेत् ॥
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥
पूज्यते यदपूज्योऽपि यदगम्योऽपि गम्यते ।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि स प्रभावो धनस्य च ॥
गतवयसामपि पुंसां येषामर्था भवन्ति ते तरुणाः ।
अर्थेन तु ये हीना वृद्धास्ते यौवनेऽपि स्युः ॥

२ - देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ १३८-३९

कामकथा

धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग की प्रमुखता का प्रतिपादन करते हुए कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कहा है : "धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत, न निःसुखः स्यात् (१. ७. ३); समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबद्धम् (१. ७. ४); एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति" (१.७.५)[१] — धर्म और अर्थ के अविरोध से काम का सेवन करे, सुख से वंचित न रहे; तीनो वर्गों का समान रूप से सेवन करे, तीनों परस्पर अनुबद्ध हैं; यदि तीनो मे से एक का अतिशय रूप में सेवन किया जाय तो वह एक और शेष दोनों कष्ट मे पड़ जाते है । नीतिवाक्यामृत में इसी बात को प्रकारान्तर से कहा गया है :"यः कामार्थावुपहत्य धर्ममेवोपास्ते स पक्वक्षेत्रं परित्यज्यारण्यं कृषति" (१.४८), अर्थात् काम और अर्थ का परित्याग कर केवल धर्म की ही उपासना करना, खेती-योग्य क्षेत्र छोड़कर अरण्य मे हल चलाने के समान है ।

कहा जा चुका है कि अर्थकथा की भांति अनी धर्मकथाओ को रोचक बनाने के लिए जैन विद्वानों ने कामकथा का आधार लेना भी आवश्यक समझा । कमलश्रेष्ठी के पुत्र की कथा ऊपर दी जा चुकी है । जब उसके पुत्र को दो धर्मगुरु सुमार्ग पर न ला सके तो तीसरे धर्मगुरु ने अपने प्रवचन मे श्रृंगार रस का पुट देकर उसे धर्म की ओर उन्मुख किया । तात्पर्य यह है कि केवल वैराग्योत्पादक शान्त रस द्वारा ही श्रोताओ अथवा पाठको को आकर्षित करना पर्याप्त नहीं समझा गया । इस संबंध में धर्मसेनगणि महत्तर ने अपनी कृति मज्झिमखंड की भूमिका मे (प्रभावती लंभ १, पृ. २) में लिखा है : "नहुप, नल, धुंधुमार, निसह, पुरुरव, मान्धाता, राम, रावण, जाणमेयक, राम, कौरव, पांडुसुत, नरवाहनदत्त आदि लौकिक कामकथाओं का श्रवण कर श्रोतागण एकान्त रूप से कामकथाओं में आनंद लेते हैं (लोगो एगंतेण कामकहासु रज्जति), अतएव सुगति को ले जाने वाले धर्मश्रवण की इच्छा उनमें नहो रहती जैसे कि पित्तज्वर से जिसका मुंह कडुआ हो गया है, ऐसे रोगी को गुड़-शक्कर, खांड या बूरा भी कडुआ लगने लगता है । ऐसी हालत में जैसे कोई वैद्य अमृत-रूप औपध-पान से पराड्मुख रोगी को मनोभिलपित औषध-पान के बहाने अपनी औपध

---

१ - कौटिल्य का यह सूत्र इसी रूप में सोमदेव सूरि के नीतिवाक्यामृत (३.४) में भी ।

जैनकथा-साहित्य

जैन कथा साहित्य लौकिक कथा-कहानियों का अक्षय भंडार है । इसमें कितनी ही रोचक एवं मनोरंजक लोककथाएं, नीति कथाएं, औपदेशिक कथाएं, पौराणिक कथाएं, धूर्त-पाखंडी कथाएं, मुग्ध कथाएं, वेश्या-कुट्टिनी कथाएं, प्राणि कथाएं, दृष्टान्त कथाएं, लघु कथाएं, आख्यान, वार्ताएं आदि अपने विविध रूपों में शताब्दियों से सर्व-सामान्य के आकर्षण का स्थान बनी हुई है । "जैन कथा-साहित्य केवल संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए ही उपयोगी नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता के इतिहास पर इससे महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है । . . . मध्यकाल के आरंभ से लगाकर आज तक जैन विद्वान ही लब्धप्रतिष्ठ कथाकार रहे हैं । इस विशाल कथा-साहित्य में जो सामग्री सन्निहित है, वह लोकवार्ता के अध्येता विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।..... इन विद्वानों ने हमें कितनी ही ऐसी अनुपम भारतीय कथाओं का परिचय कराया है जो हमें अन्य किसी स्रोत से उपलब्ध न हो पातीं ।" - ये वाक्य हैं पचतंत्र के विश्व-विख्यात अध्येता तथा अनेक जैन कथा-ग्रंथों के संपादक एवं अनुवादक जर्मन-मनीषी जॉहानेस हर्टल के, जो उन्होंने जैन कथा - साहित्य के गंभीर अध्ययन के पश्चात् अपनी महत्वपूर्ण कृति 'ऑन द लिटरेचर ऑफ श्वेताम्बराज़ ऑफ गुजरात' (लाइप्त्सिग, १९२२) में आज से ७२ वर्ष पूर्व अभिव्यक्त किये हैं ।

जैनकथा-साहित्य का वैशिष्ट्य

भगवान महावीर ने समस्त जनों के हित के लिए, उनके सुख के लिए, पंडितों की भाषा संस्कृत में उपदेश न देकर, बाल, वृद्ध एवं स्त्री जनों द्वारा बोधगम्य, मगध में बोली जाने वाली मागधी अथवा अर्धमागधी में अपना उपदेश प्रवर्तित

किया, जिससे उनकी लोकहितैषी सार्वजनीन वृत्त का परिचय मिलता है । महावीर का उपदेश गौतम गणधर द्वारा रचित द्वादशांग वाणी में (बारह अंग) निबद्ध था । दिगम्बर आम्नाय के अनुसार, द्वादशांग आगम का उच्छेद हो जाने से केवल दृष्टिवाद का कुछ अंश ही शेष बचा है । वस्तुत: महावीर के काल मे दिगम्बर और श्वेतांबर संप्रदाय जैसा कोई संप्रदाय नही था, दोनों ही ज्ञातृपुत्र श्रमण भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार करते थे । निर्ग्रन्थ धर्म की मूल मान्यताएं दोनो को ही समान रूप से स्वीकृत थी । इसके सिवाय, दोनो सम्प्रदायो के उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से पता लगता है कि प्राचीन परंपरागत विषय और उसकी वर्णन-शैली ही नही, अपितु गाथाओ की समानता एव वर्णित कथा-कहानियो का सादृश्य उपरोक्त वक्तव्य का पूर्णतया समर्थन करते है । विशेषकर कथा-कहानियो के क्षेत्र मे संप्रदाय-भेद का कोई कारण नही जान पड़ता, इस संबध में हम आगे चलकर विचार करेगे ।

जैनकथा-साहित्य के शैशवकाल मे हम उपमाओ, दृष्टान्तो, उदाहरणों और लघु आख्यानो की प्रमुखता पाते है । बौद्धों के नंगलीस जातक मे वाराणसी के कोई आचार्य अपने शिष्य को उपमाओं द्वारा ही शिक्षा दिया करते थे । दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रंथो मे मनुष्य-जन्म की दुर्लभता का प्रतिपादन करने के लिए चोल्लक, पाशक आदि दस दृष्टान्त दिये गये है । मधुबिन्दु दृष्टान्त सुप्रसिद्ध है, महाभारत मे भी इसका उल्लेख है । इसे श्रमण-काव्य का प्रतीक कहा गया है । जंगल के किसी व्याघ्र से भयभीत हुए व्यक्ति को सामने एक वृक्ष दिखाई देता है जिसे पकड़कर वह अधर मे लटक जाता है । वृक्ष की शाखाएं एक गहरे कुएं मे फैल रही है । कुएं के भीतर सर्प का बिल है । चूहे वृक्ष की जड़ काटने मे लगे हुए हैं । वृक्ष पर मधुमक्खियो का छत्त लगा है जिसमे से थोड़ी-थोड़ी देर बाद शहद की बूंद टपक रही है । यह बूंद उस व्यक्ति के मस्तक पर गिरती है, मस्तक से बहकर उसके ओठों तक पहुंचती है जिसे वह अपनी जीभ से चाटकर अपार आनन्द का अनुभव करता है । यहां व्याघ्र मृत्यु है, सर्प दुख, सर्प का बिल संसार, वृक्ष आशा, चूहे विघ्न-बाधाएं, और मधुबिन्दु सांसारिक विषय-भोग । उत्तराध्ययनसूत्र मे नमि राजर्षि और शक्र का सुंदर

सवाद आता है जिसमें तप के आदर्श को एक योद्धा और राजा के आदर्श को बराबरी में रक्खा गया है : निर्ग्रन्थ मुनि श्रद्धा-रूपी नगर का निर्माण कर, उसमें तप और संवर की अर्गला लगा, क्षमा का प्राकार बना, तीन गुप्तियों-रूपी अट्टालिका, खाई और शतघ्नी का निर्माण कर, धनुष-रूपी पराक्रम तान, ईर्यासमिति का प्रत्यंचा बांध, धैर्य की मूठ लगा और तप-रूपी बाण द्वारा कर्म-रूपी कंचुक का भेदन कर संग्राम में विजय प्राप्त करते है ।

श्वेताम्बर आगम और उनकी टीकाओं में वर्णित आख्यान

श्वेताम्बर-मान्य आगमों और उनकी टीका-टिप्पणियों में अनेक प्रभावोत्पादक सरस एवं सुन्दर लौकिक आख्यान वर्णित हैं जो कथा-साहित्य की दृष्टि से बहुमूल्य है और जिनका वस्तुतः किसी सम्प्रदाय विशेष से संबंध नहीं । सूत्रकृतांग में, जिसकी गणना प्राचीन आगम-ग्रंथों में की जाती है, पुष्करिणी में खिले हुए कमल के दृष्टान्त द्वारा जैन श्रमणों को पाप-कर्म से निवृत्त होकर सम्यक् चारित्र का पालन करने के लिए अनुप्राणित किया गया है । किसी पुष्करिणी में एक से एक सुंदर कमल खिले हुए हैं, बीच में एक अत्यन्त सुन्दर कमल शोभायमान हो रहा है । चारों दिशाओं से चार व्यक्ति उस सुन्दर कमल-पुष्प को तोड़ने के लिए अग्रसर होते हैं, लेकिन असफल रहते हैं । इतने में एक व्यक्ति वहां उपस्थित होकर उस सुंदर पुष्प को प्राप्त कर लेता है । यहां पुष्करिणी की उपमा संसार से, कमलों की मनुष्यों से, सुंदर कमल की राजा से, चारों दिशाओं से आनेवाले चार व्यक्तियों की मिथ्यादृष्टि साधुओं से और पुष्प प्राप्त करने वाले व्यक्ति की जैन श्रमण से की गयी है । नायाधम्मकहाओ अथवा णाहधम्मकहाओ एक दूसरा महत्वपूर्ण आगम-ग्रंथ है जिसमें कहा जाता है कि स्वयं महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्मकथाओं का वर्णन है । विभिन्न उदाहरणों और दृष्टान्तों द्वारा यहां रोचक ढंग से संयम, तप और त्याग का सरस प्रतिपादन किया गया है । अंडक अध्ययन में मयूरी के अंडों के दृष्टान्त द्वारा और कूर्म अध्ययन में दो कछुओं के दृष्टान्त द्वारा जैन श्रमणों को उपदेश दिया गया है ।

जैसे कछुआ अपने अंग-प्रत्यंग को अपनी खोपडी मे छिपाकर श्रृगाल से अपनी रक्षा करने मे सफल होता है, उसी प्रकार जैन-साधु को उपदेश दिया गया है कि वह अपनी इंद्रियों और मन पर अंकुश रखकर संसार के प्रलोभनो से अपनी रक्षा करे । अन्यत्र एक दर्दुर (मेढ़क) की कथा आती है जो राजगृह मे भगवान महावीर के समवशरण का आगमन सुनकर प्रसन्न-चित्त से उनके दर्शनार्थ अग्रसर होता है किन्तु मार्ग मे किसी पशु के पांव से कुचला जाकर वह स्वर्गगति प्राप्त करता है । उल्लेखनीय है कि यह आख्यान दिगम्बरीय समंतभद्र-कृत रत्नकरण्डश्रावकाचार मे भी उद्धृत है जिससे हमारे उपरोक्त कथन का ही समर्थन होता है कि कथा-साहित्य मे दिगम्बर-श्वेतांवर संप्रदाय-भेद प्राय: नही-के-बराबर रहा ।उत्तराध्ययन काव्य की एक महत्त्वपूर्ण रचना है जिसकी तुलना महाभारत तथा बौद्धो के धम्मपद और सुत्तनिपात से की गयी है । यहां विविध आख्यानों और संवादों द्वारा श्रमणधर्म का प्रतिपादन किया गया है । तीन व्यापारियो की कहानी मे तीनो व्यापारी धन कमाने के लिए परदेश यात्रा के लिए प्रस्थान करते हैं । पहला लाभ कमाकर लौटता है, दूसरे को न लाभ होता है न हानि, और तीसरे की सारी पूंजी ही खर्च हो जाती है । यहां पूंजी को मनुष्य-जीवन, लाभ को स्वर्ग और हानि को नरक गति बताया गया है ।

पालि त्रिपिटक पर लिखी गयी बुद्धघोष की अट्ठकथाओं की भांति श्वेताम्बरीय आगम साहित्य पर भी महत्वपूर्ण व्याख्याएं लिखी गयीं । इनमें निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीका का प्रमुख स्थान हैऔर यह साहित्य जैन कथा-साहित्य की दृष्टि से मूल्यवान है । निर्युक्ति आगम ग्रंथो पर आर्या छंद मे प्राकृत गाथाओं मे रचित विवेचन है । यह साहित्य इतना सांकेतिक एवं संक्षिप्त है कि विना भाष्य और टीका के इसका बोधगम्य होना कठिन है । निर्युक्तियों में कथाओ का नामोल्लेख मात्र किया गया है, संपूर्ण कथा यहां नहीं कही गयी । इन कथाओ का ज्ञान पूर्व आचार्य परम्परागत साहित्य से किया जा सकता है । निर्युक्ति साहित्य की तुलना दिगंवरीय शिवकोटि की भगवती आराधना से की जा सकती है । यहां अनेक आख्यानो, दृष्टान्तो, उदाहरणो, प्रश्नोत्तरों, सूक्तियो और समस्यापूर्ति द्वारा विषय का विवेचन किया गया है । कथा-साहित्य की दृष्टि से चूर्णियो का विशिष्ट स्थान है । चूर्णियां

संस्कृत-मिश्रित प्राकृत गद्य में लिखी गयी है, अतएव जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए यह विधा अधिक उपयोगी सिद्ध हुई । यहां अनेक विविध कथा-कहानियों के माध्यम से विषय का स्पष्टीकरण किया गया है । दिगम्बर संप्रदाय में भी चूर्णिया लिखी गई हैं । उदाहरण के लिए, आदिपुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन के गुरु वीरसेन ने बप्पदेव कृत व्याख्याप्रज्ञप्ति-टीका के आधार से चूर्णियो की शैली में संस्कृत-मिश्रित प्राकृत में धवला-टीका की रचना की । इसी प्रकार आचार्य यतिवृषभ ने कषायप्राभृत पर चूर्णि सूत्रों का प्रणयन किया । चूर्णि साहित्य में निशीथविशेष चूर्णी और आवश्यक चूर्णी का स्थान महत्वपूर्ण है । इन चूर्णियों में अनेक रोचक कथा-कहानियों द्वारा धर्म और नीति की शिक्षा दी गयी है । निशीथ-विशेष चूर्णी की एक लौकिक कथा पढ़िए : किसी जंगल में तालाब के किनारे हाथियो का झुंड रहता था । एक बार वह तालाब में पानी पीने आया और मध्याह्न के समय वहीं वृक्ष की छाया में सो गया । उस समय वहां पास में दो गिरगिट लड़ रहे थे । यह देखकर वनदेवता ने घोषणा की, "इन गिरगिटों को लड़ने से रोको, जहां दो गिरगिट लड़ते हैं वहां हानि अवश्यभावी है । लेकिन जलचर और थलचर जीवो ने इस घोषणा की परवा न की । लड़ते-लड़ते दोनों गिरगिट एक हाथी की सूंड के अंदर जा घुसे । हाथी के कपाल में युद्ध मच गया । हाथी वेदना से बिलबिलाकर भागा और उसने वन-खंड को चूर-चूर कर दिया । अनेक प्राणी मर गये, जलचर जीव नष्ट हो गये, तालाब की पाल टूट गयी और तालाब नष्ट हो गया ।

आवश्यक चूर्णी में एक मनोरंजक कहानी उद्धृत है : किसी ब्राह्मणी के तीन कन्याएं थीं । अपनी कन्याओं को उसने शिक्षा दी कि विवाह के पश्चात् प्रथम दर्शन में वे पादप्रहार से अपने पति का स्वागत करें । सबसे जेठी कन्या की लात खाकर उसके पति ने उसका पैर दबाते हुए कहा, "प्रिये, कहीं तुम्हें चोट तो नहीं लग गयी ।" मां को जब पता लगा तो उसने अपनी बेटी से कहा - "बेटी, तू अपनी इच्छानुसार आनन्दपूर्वक खा, पी, और मौज कर; तेरा पति तेरा कुछ नहीं कर सकता ।" मझली लड़की ने भी ऐसा ही किया । उसकी लात खाकर उसके पति ने अपनी पत्नी को भला-बुरा कहा, लेकिन वह जल्दी ही शांत हो गया । मां ने कहा, "तू भी आराम से रहेगी" । तीसरी कन्या की लात खाकर उसके पति ने उसे मारना-पीटना शुरू कर

दिया और उसे कुलच्छनी कहकर उसे बहुत डांटा । कन्या की मा ने कहा - "बेटी, तू हमेशा अपने पति की आज्ञा मानना और उसका साथ कभी मत छोडना ।" अप्रशप्त भावो का यह दृष्टान्त है ।

आगम-ग्रंथों पर लिखी हुई टीकाओ का साहित्य विशाल है, अतएव कथा-साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है । आगमो के टीकाकारो मे जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण (छठीं शताब्दी ईसवी), याकिनीसूनु हरिभद्रसूरि (आठवी शताब्दी ईसवी), वादिवेताल शान्तिसूरि (ग्यारहवी शताब्दी ईसवी), मलयगिरि (बारहवी शताब्दी ईसवी) और अभयदेव सूरि (बाहरवी शताब्दी ईसवी) आदि के नाम सर्वोपरि है । कहने की आवश्यकता नहीं कि टीका-साहित्य ने अपने उत्तरकालीन साहित्य को विशेप रूप से प्रभावित किया ।

(१) हरिभद्रकृत आवश्यक वृत्ति से यहां एक लौकिक कथा उद्धृत की जाती है :

किसी वृक्ष पर एक बंदर रहता था । वर्षा-काल मे उसे ठंडी हवा से कापते देख सुंदर घोसले वाली बया कहने लगी :

वानर ! पुरिसो सि तुमं निरत्थयं वहसि बाहुदडाइं ।
जो पायवस्स सिहरे न करेसि कुडि पडालिं वा ॥

— हे बंदर, पुरुप होकर भी व्यर्थ ही तू अपनी भुजाओं को धारण किये फिरता है, तू क्यों वृक्ष के ऊपर अपना घर बनाकर नही रहता ?

बया की बात सुनकर पहले तो बंदर चुप रहा । लेकिन बया ने जब वही बात फिर-फिर दुहरायी तो गुस्से में आकर वह वृक्ष पर जा चढ़ा । फिर उसने बया के घोसले के तिनके करके उसे हवा में उड़ा दिया । वह कहने लगा:

न वि सि ममं ममहरिया, न वि सि ममं सोहिया व णिद्दावा ।
सुघरे ! अच्छुस विघरा, जो वट्टसि लोगतत्तीसु ॥

— न तो तुझे मेरी शरम है, न मुझे अच्छी लगती है और न मैं तुझसे स्नेह ही करता हूं । हे सुघरे अब तू बिना घर के रह, दूसरे लोगो की तुझे बहुत पड़ी है ![1]

---

१ - पृ २६२, तथा देखिये, आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णी, ३४५ । यहां यह कहानी गाथाओं में वर्णित है; बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति, १.३२५२; देखिए पचाख्यान ५.१९, कूटदूसक जातक (३२१), पचतत्र, मित्रभेद ।

यहां बंदर के दृष्टांत द्वारा लब्धि-प्राप्त गर्वोन्मत्त साधु को शिक्षा दी गयी है । आवश्यक वृत्ति की एक दूसरी मनोरंजक लौकिक कथा देखिए :

(२) कोई वणिक् अपनी दोनों स्त्रियों के साथ किसी अन्य राज्य में रहने चला गया । वहां उसकी मृत्यु हो गयी । उसके मरने के बाद शिशु को लेकर दोनों सौतों में झगड़ा होने लगा । एक कहती, यह शिशु मेरा है; दूसरी कहती, नहीं, इसे मैंने जन्म दिया है । जब कोई निर्णय न हो सका तो दोनों राजदरबार में पहुंचीं । राजा के मंत्री का फैसला था कि शिशु के दो हिस्से करके दोनों को आधा-आधा दे दिया जाय । यह सुनकर शिशु की असली मां रोकर कहने लगी-'मुझे शिशु नहीं चाहिए, मेरी सौत ही इसे रख ले ।' शिशु उसकी असली मां को दे दिया गया ।[1]

आवश्यक वृत्ति की एक अन्य लौकिक कहानी यहां उद्धृत की जाती है :

(३) एक बार पर्वत और मेघ में वाक्-युद्ध ठन गया । मेघ ने कहा - 'मैं तुझे अपनी एक छोटी-सी धार में बहा सकता हूं, समझता क्या है तू अपने आपको ?'

पर्वत - 'यदि तू मुझे तिलभर भी हिला दे तो मैं अपना नाम बदल दूं ।'

यह सुनकर मेघ का मुंह गुस्से से लाल-पीला हो गया । वह लगातार सात दिन और सात रात बरसता रहा । उसने सोचा - अब देखता हूं यह कहां जायेगा । अब तो उसके होश-हवाश जरूर ठिकाने आ जायेंगे ।

लेकिन सुबह उठकर देखता क्या है कि पर्वत उज्ज्वल होकर अपनी जगह खड़ा हुआ चमक रहा है ।[2]

---

१ - पृ ४२०, तथा देखिए आवश्यक चूर्णी, ५४९, वसुदेवहिंडि, ३५८. १३-१९. महाउम्मग्ग जातक (५४६) में महोसध पंडित भी यही निर्णय देता है । यह कहानी बाइबिल (किंग्स : ३.१६-२८) में भी मिलती है, द वसुदेवहिंडि - ऐन ऑथेंटिक जैन वर्जन ऑफ द बृहत्कथा, ५२८.५२९. और नोट ।

२ - पृ १००, तथा देखिए आवश्यक निर्युक्ति, १३९. आवश्यक चूर्णी, १२१; बृहत्कल्प भाष्य, ३३८ वृत्ति । यहां शैल को [illegible] शिष्य [illegible] है जो [illegible] करते हुए [illegible] [illegible] यह जो नहीं [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] [illegible] सकते हैं, [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible], पृ ३१८

दिगम्बरीय साहित्य में वर्णित आख्यान

आइए, दिगम्बरीय कथा-साहित्य पर दृष्टिपात किया जाये । श्वेतांबरीय कथा-साहित्य और दिगंबरीय कथा-साहित्य एक-दूसरे के पूरक है । यद्यपि दिगम्बर परम्परा के अनुसार, जैसा कहा जा चुका है कि गौतम गणधर द्वारा निबद्ध द्वादशांग क्रमश: विलुप्त हो गया है, फिर भी इस सप्रदाय के प्राचीन ग्रथो मे परपरागत अनेक आख्यान, कथानक, दृष्टांत, संवाद आदि उपलब्ध होते है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है । पाणितल-भोजी शिवार्य अथवा शिवकोटि विरचित भगवती आराधना, जो आराधना अथवा मूलाराधना के नाम से भी प्रसिद्ध है, दिगम्बर जैन संप्रदाय का प्राचीन ग्रंथ माना जाता है । इस ग्रंथ के आचार-प्रधान होने पर भी इसमे अनेक औपदेशिक, अनुश्रुत, शिक्षाप्रद और श्रमण संबंधी सक्षिप्त आख्यान संकलित है, जिनके पात्रो का केवल उल्लेख मात्र किया गया है, और जिनको आधार मानकर उत्तरवर्ती जैन कथाकारो ने अपनी रचनाएं प्रस्तुत की । इस ग्रंथ मे अवन्ति सुकुमाल, सुकोशल, गजसुकुमार, सनत्कुमार, अन्निकापुत्र, भद्रबाहु, धर्मघोष, श्रीदत्त, वृषभसेन, अग्निराजसुत, अभयघोष, विद्युच्चर, गुरुदत्त, चिलातपुत्र, दंड, अभिनंदन, चाणक्य आदि अनेक जैन श्रमणो के आख्यान सन्निहित है जिन्होने घोर उपसर्ग सहनकर सिद्धि प्राप्त की । ये आख्यान श्वेताबर परंपरा द्वारा मान्य संथारग, भत्तरिण्णा और मरणसमाही नामक प्रकीर्णक ग्रंथो मे भी पाये जाते है, दोनो की गाथाए समान है । भगवती आराधना के विजहन नामक चालीसवे अधिकार मे (१९७४-२०००) जैन श्रमण के मृतक संस्कार का वर्णन है और यह वर्णन श्वेताम्बरीय वृहत्कल्प सूत्र के विष्वग्भवन प्रकरण (४. २९) और उसके भाष्य (५४९७-५५६५) से हूबहू मिलता है; दोनो की गाथाओ मे समानता है ।[1] यह भी उल्लेखनीय है कि भगवती आराधना पर

---

१ - तथा देखिए आवश्य निर्युक्ति, २ (९४-१३०), पृ. ७१ अ - ७६; व्यवहार भाष्य, ७, ४४२-४६; आवश्यक चूर्णी, २, पृ १०२-९; हरिभद्रीय आवश्यक वृति । भगवती आराधना में इसे विजहना (विहान), आवश्यक निर्युक्ति और आवश्यक चूर्णी मे परिट्ठावणीय (परिष्ठापनिका), और बृहत्कल्प भाष्य में विसुभण (विष्वग्भवन) नाम से उल्लिखित किया गया है । देखिए जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशिएण्ट इंडिया ऐज डिपिक्टेड इन जैन कैनन एंण्ड कमेन्ट्रीज, १९८४, पृ २८१-८३, डिस्पोज़ल ऑफ द डेड इन द भगवती आराधना, स्टडीज इन अर्ली जैनिज्म, पृ ९७-१०४ ।

संस्कृत में ही नहीं, प्राकृत की भी टीका लिखी गयी, जो अनुपलब्ध है । अपराजित सूरि (अपरनाम श्रीविजयाचार्य, ईसवी सन् की ७ वीं शताब्दी के बाद) ने इस ग्रंथराज पर विजयोदया अथवा आराधना नामक संस्कृत टीका लिखी । दशवैकालिक सूत्र पर भी इन्होंने विजयोदया टीका की रचना की । टीकाकार ने अपनी टीका में आचारप्रणिधि (दशवैकालिक सूत्र का आठवां अध्याय), आचारांग, सूत्रकृतांग, निशीथ, बृहत्कल्प सूत्र और उत्तराध्ययन नामक प्राचीन आगमों के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं । ये आगम श्वेताम्बरीय परंपरा में उपलब्ध हैं । हो सकता है कि दिगंबर परंपरा में मान्य आगम-ग्रंथों के पाठ कुछ भिन्न रहे हों ।

भगवती आराधना की भांति मूलाचार भी दिगम्बर संप्रदाय का महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथ है । यहां भी मुनियों के आचार का ही प्रतिपादन है, अतएव कथा-साहित्य की दृष्टि से इसका भी विशेष मूल्य नहीं है । मूलाचार को आचारांग भी कहा गया है जिसमें ग्रंथकर्ता वट्टकेर ने अपने शिष्यों के हितार्थ आचारांग का संक्षिप्त सार प्रस्तुत किया है । आवश्यक निर्युक्ति,[1] दशवैकालिक निर्युक्ति,[2] पिण्डनिर्युक्ति,[3] भत्तपइण्णा और मरणसमाही आदि श्वेतांबर-मान्य आगमों से मूलाचार की अनेक गाथाओं की समानता है, इस कारण भी मूलाचार का महत्त्व है । इसका रचनाकाल ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी के आसपास माना जाता है । मूलाचार में मिथिला के राजा महेन्द्रदत्त की कथा आती है कि उसने एक ही बार की मैथुन-क्रीड़ा में कनकलता, नागलता, विद्युल्लता और कुन्दलता[4] की हत्या कर दी । इसी राजा द्वारा सागरक, वल्लभक,

---

१. पंडित सुखलालजी ने पंचप्रतिक्रमण सूत्र में मूलाचार और आवश्यक निर्युक्ति की गाथाओं का मिलान किया है ।

२. ए. एम. घाटगे ने इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, १९३५ में दशवैकालिक निर्युक्ति तथा ... में मूलाचार और दशवैकालिक निर्युक्ति की गाथाओं का मिलान किया है । मूलाचार की 'जयं चरे' और 'जदं चरे' गाथाओं की तुलना दशवैकालिक सूत्र (४.७-८) से की जा सकती है, जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, १९६१, पृ. २०० और नोट ।

३. मूलाचार (६.१-४२) की तुलना पिण्डनिर्युक्ति की गाथाओं (९२,१-८३) से कीजिए ।

४. बृहत्कल्पभाष्य में पद्मलता (१.८) ... [illegible] ... विद्युल्लता और कुन्दलता (...) के उल्लेख आते हैं किन्तु यहां प्रसंग दूसरा है । ... [illegible] ... में है ।

कुलदत्तक और वर्धमानक की एक ही दिन मे हत्या कर देने के उल्लेख हैं (२.८६-८७, पृ. ८५-८६), अतएव निष्कर्ष मे कहा गया है कि यति को सदा समाधिमरण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । टीकाकार वसुनन्दि ने इन कथाओ की व्याख्या आगम से अवगत करने का आदेश दिया है (कथानिका चात्र व्याख्येया आगमोपदेशात्) । आगे चलकर मूलाचार के पिण्डशुद्धि अधिकार (६, ३५) मे क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत होकर भिक्षा प्राप्त करने वाले साधुओ के आख्यान दिये है, जो श्वेताम्बरीय पिण्डनिर्युक्ति (४६१-८३) मे उल्लिखित है ।

श्रावक-श्राविकाओं के आचार का वर्णन करने वाले श्रावकाचार अथवा उपासकाध्ययन नाम से विहित ग्रंथो मे भी व्रतो के दृष्टान्त स्वरूप जहां-तहां कथानक मिल जाते है । इन ग्रथो मे विशेषकर देवपूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान - इन छह धार्मिक कृत्यो का महत्त्व प्रतिपादन किया गया है । उदाहरण के लिए, समन्तभद्र-कृत रत्नकरण्डश्रावकाचार, जिसे उपासकाध्ययन भी कहा है, मे सम्यक्त्व के आठ अगो के उदाहरणो मे निम्नलिखित आठ कथाएं दी हैं - (१) निःशंकित अंग मे अजन चोर, (२) निःकांक्षित अग मे अनन्तमति[1], (३) निर्विचिकित्सा अंग मे उद्दायन[2], (४) अमूढ़दृष्टि अंग मे रेवती, (५) उपगूहन अंग मे जिनेन्द्रभक्त,[3] (६) स्थितिकरण अंग मे वारिषेण, (७) वात्सल्य अंग मे विष्णुकुमार,[4] और (८) प्रभावना अग मे वज्र (१.११.२०) । यहा कथा-पात्रो के केवल नाम मात्र गिनाये गये हैं; आचार्य प्रभाचन्द्र-कृत (ईसवी ९८०-१०५५) टीका में विस्तृत कथाएं दी हुई है (पृ. १२-२४) । तत्पश्चात् पंच अणुव्रतो के पालनेवालो मे, अहिंसाणुव्रत मे मातंग,[5] सत्याणुव्रत मे धनदेव, अचौर्याणुव्रत मे वारिषेण, ब्रह्मचर्याणुव्रत मे नीली और

---

१ - अचौर्याणुव्रत की भी यही कथा है ।

२ - उद्दायन की कथा श्वेताम्बर ग्रथो में उपलब्ध हैं ।

३ - वसुनन्दि-कृत उपासकाध्ययन में जिनदत्त ।

४ - कहीं प्रभावना अग में यह कथा दी गई है । विष्णुकुमार की कथा के लिए देखिए, आगे यही पुस्तक, पृ ३२-३६ ।

५ - देखिए, भगवती आराधना, ८१६; बृहत्कथाकोश, ७२; सोमदेवसूरि के उपासकाध्ययन मे मृगसेन धीवर ।

अपरिग्रह अणुव्रत में जय' की कथाएं मिलती हैं (३, १८) । यहां भी कथा-पात्रों का नामोल्लेख मात्र है, प्रभाचन्द्र-कृत टीका में विस्तृत कथाएं दी है (४८-५२) ।

इसी ग्रंथ में आगे चलकर हिंसा आदि पांच पापों के उदाहरण देते हुए हिंसा में धनश्री, असत्य में सत्यघोष, चौर्य में तापस, अब्रह्मचर्य में आरक्षक और परिग्रह में श्मश्रुनवनीत के आख्यान, केवल इनके नामोल्लेख के साथ दिये गये हैं (३.१९); टीका में कथाओं की जानकारी मिलती है (पृ. ५२-५९) । सत्यघोष का अपर नाम श्रीभूति है । अपने यज्ञोपवीत में वह एक कैंची लटकाये रखता था । वह कहा करता कि जो कोई मिथ्या भाषण करेगा, उसकी जीभ कैंची से कतर दी जायेगी (प्रभाचन्द्र टीका) । श्रीभूति पुरोहित का आख्यान दिगंबर और श्वेतांबर, दोनों संप्रदायों के कथा-ग्रंथों में साधारण हेरफेर के साथ पाया जाता है, अतएव महत्वपूर्ण है ।[2] भगवती आराधना (८६८) और उपासकाध्ययन में यह कथा चौर्य के उदाहरण में दी गयी है; अन्यत्र असत्य भाषण में राजा वसु की कथा आती है । तापस की कथा की टीका में एक अन्तर्कथा दी हुई है जिसमें चार आश्चर्यों का सूचक निम्न श्लोक उल्लिखित है :

अबालस्पर्शका नारी ब्राह्मणस्तृणहिंसकः ।
वने काष्ठमुखः पक्षी पुरेऽपसरजीवकः ॥ (पृ. ५७)

यह अन्तर्कथा इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह श्वेताम्बरीय कथाग्रंथों में भी पायी जाती है । मलधारि हेमचन्द्र (ईसा की १२ वी शताब्दी) की भवभावना में प्रसंगोपात्त निम्न श्लोक मिलता है :

बालेन चुम्बिता नारी ब्राह्मणो शीर्षहिंसकः ।
काष्ठीमुखो वने पक्षी जीवानां रक्षको यती ॥[3]

१- जिनसेन कृत हरिवंशपुराण में श्मश्रुनवनीत का उदाहरण ।

२- देखिए, [illegible] २०२, ८०-९२, आवश्यक चूर्णी, पृ ५५०; हरिषेण बृहत्कथाकोश (१८६) सोमदेव सूरि, उपासकाध्ययन २७, पृ १६६-७४; [illegible] और [illegible] इन जैन [illegible], ऑल इंडिया ओरियंटल कॉन्फ्रेंस २१ वां अधिवेशन, [illegible] अक्टूबर १९६१, [illegible] पृ १२८-१३५ ।

३- इस कथा के हिन्दी अनुवाद के लिए देखिए, [illegible] पृ ६०-६१, [illegible] १९६१, पृ २२५-२८, अंग्रेजी अनुवाद के लिए [illegible] और [illegible] १९६० पृ १५-१९ ।

आरक्षक की कथा के स्थान पर भगवती आराधना (९२९); वसुदेवहिंडि (२९६, ४-२५), वृहत्कथाकोश (८२), उपासकाध्ययन, (३१, पृ. १९४-२०३) मे करालपिंग अथवा कडारपिंग की कथा वर्णित है ।[१]

श्मश्रुनवनीत के संबंध मे कहा गया है कि छाछ पीने से उसकी मूछो मे नवनीत लगा रह जाता था, इसलिए उसका नाम श्मश्रुनवनीत पडा । एक दिन वह अपने सोने की खाट के पायतों घी का पात्र रखकर लेट गया । खाट पर लेटा-लेटा सोचने लगा - "घी बेचकर वह बहुत-सा धन कमायेगा, फिर सार्थवाह बनकर वनिज-व्यापार करेगा, सामन्त, महासामन्त, राजाधिराज और फिर चक्रवर्ती पद प्राप्त करेगा, स्त्री-रत्न की पादप्रहार से ताडना करेगा ।" पादप्रहार से घी का पात्र फूट गया ![२]

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कथानक भी रत्नकरण्डश्रावकाचार मे उपलब्ध है । यहां भी कथानक से संवधित व्यक्तियो के केवल नाममात्र का उल्लेख है, कथा का ज्ञान टीका से ही प्राप्त होता है । चार प्रकार के दानो के दृष्टान्तो मे, आहार दान मे श्रीपेण, औपधदान मे वृपभसेना, श्रुतदान मे कौण्डेय और वसतिदान मे मूकर के नाम गिनाये गये है (४ २८) । इसी प्रकरण मे एक मेढ़क की कथा उल्लिखित है जो राजगृह मे वेभार पर्वत पर महावीर भगवान का आगमन सुन, प्रसन्नवदन, भक्तिभाव से ओतप्रोत, पूजा के हेतु एक कमल लेकर उनके दर्शन के लिए प्रस्थान करता है । किन्तु मार्ग मे हाथी के पद से कुचला जाकर स्वर्गगति प्राप्त करता है (४, २० और टीका) । कहा जा चुका है कि यह आख्यान श्वेताम्बरीय नायाधम्मकहाओ मे भी सकलित है जिससे इसकी प्राचीनता प्रकट होती है ।

सोमदेवसूरि के उपासकाध्ययन (यशस्तिलकचम्पू के अंतिम तीन आश्वास) मे भी कतिपय कथाएं आती है । उपरोक्त सम्यक्त्व के नि.शंकित आदि आठ अंगो मे रत्नकरंडश्रावकाचार मे वर्णित अंजन चोर आदि के आख्यानो के केवल नाममात्र ही

---

१ - इस कथा के अंग्रेजी रूपातर के लिए देखिए, द गिफ्ट ऑफ लव, पृ ८-१४ ।

२ - श्वेतावरीय व्यवहार भाष्य (उद्देश ३, पृ ८ अ) में भी उल्लिखित । इस प्राचीन कथानक आदि के लिए देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत नेरेटिव लिटरेचर, पृ ५९-६०; भगवती आराधना (११३४), वृहत्कथाकोश (१०४) और उपासकाध्ययन में इसके स्थान पर पिन्याकगंध का आख्यान है ।

नहीं, उनकी कथाएं भी यहां मिलती हैं (देखिये, कल्प ७-९, ११-२०१, पृ० ४९-९३) । तत्पश्चात् मद्यपायी एकपात संन्यासी (९ कल्प २२, पृ. १३०-३१), महाव्रती धूर्तिल चोर[1] (२३७, पृ. १३१-३३), मांसभक्षण-संकल्पी राजा सौरसेन (५४, पृ. १४०-४२) और मांसत्यागी चांडाल (२५, पृ. १४२-४३) की कथाएं आती हैं । फिर अहिंसाव्रत के पालन में मृगसेन धीवर[2] (२६, पृ. २५५-६६), चोरी में आसक्त श्रीभूति पुरोहित[3] (२७, पृ १६७-७४), असत्य भाषण में वसु, पर्वत और नारद[4] (२८-३०, पृ. १७८-१९१), अब्रह्मचर्य में कडारपिंग[5] (३१, पृ. १९४-२०३) और परिग्रह में पिण्याकगंध[6] (३२, पृ. २०५-२१०) की कथाएं वर्णित हैं ।

उपासकाध्ययन (पृ ४४-४५) में, निःशंकित अंग में प्रसिद्ध अंजन चोर की कथा के अन्तर्गत शकुन और शकुनी का रूप धारण किये हुए दो देवों का रोचक संवाद मिलता है जो श्वेताम्बरीय वसुदेवहिंडि[7] (२३६, १०-२७) में भी पाया जाता है । करहाट देश के पश्चिम में दण्डकारण्य वन में कश्यप ऋषि के शिष्य जमदग्नि तपस्या में लीन थे । अत्यन्त वृद्ध हो जाने के कारण उनके सिर, दाढ़ी और मूंछों के बाल श्वेत हो गये थे । देवताओं ने पक्षियों के जोड़े का रूप बनाया और ऋषि की जटाओं में घोंसला बनाकर रहने लगे ।

१- [illegible] के भी [illegible] थे ।

२- बृहत्कथाकोश (७३) में भी ।

३- देखिए, ऊपर पृ ३०, नोट २ ।

४- भगवती आराधना (८४३) और बृहत्कथाकोश (७६) में भी ।

५- देखिए, ऊपर, पृ ३१, नोट १ ।

६- भगवती आराधना (१,१३४) और बृहत्कथाकोश (१०४) में भी । [illegible]

७- हिन्दी अनुवाद के लिये देखिये [illegible]

एक दिन पक्षी ने अपने साथी से कहा - "प्रिये, सुवर्णगिरि की उपत्यका में पक्षी-सम्राट गरुड़राज का वातराज की कन्या मदनकंदली के साथ होने वाले विवाहोत्सव में मुझे जाना है । तुम्हारा प्रसवकाल समीप है, इसलिए मैं तुम्हे अपने साथ नहीं ले जा सकता । मैं शीघ्र ही लौटकर आऊंगा, अपने माता-पिता की शपथ खाकर कहता हूं, यदि मैं झूठ बोलूं तो इस पापी तपस्वी के पाप का भाजन बनूं ।"

यह सुनकर जमदग्नि को बहुत क्रोध आया । दोनो पक्षियो को मारने के लिए उसने अपने दोनो हाथों से सिर को मसला । दोनों पक्षी उडकर सामने के वृक्ष पर जा बैठे और तापस की मसखरी करने लगे ।

जमदग्नि सोचने लगा - अवश्य ही ये शिव और पार्वती के समान कोई असाधारण देवता है । उसने उनके पास पहुच, प्रणाम कर अपने पापी होने का कारण पूछा । पक्षियों ने उत्तर दिया : हे तपस्वी, स्मृतिकारो का वचन है कि विना पुत्रोत्पत्ति के मनुष्यगति सफल नहीं होती और स्वर्ग तो किसी भी हालत मे प्राप्त नहीं हो सकता । अतएव पुत्र का मुह देखकर ही भिक्षु बनना चाहिए ।

यह सुनकर जमदग्नि ने तपस्या छोड, अपने मामा काशीराज के महल मे उपस्थित हो, उनकी कन्या रेणुका से विवाह किया । आगे चलकर वे परशुराम के पिता बने ।

सोमदेव सूरि के यशस्तिलकचम्पू (आश्वास ४) मे राजा यशोधर और उनकी रानी अमृतमती का आख्यान आता है जो कथानक-रूढ़ि (मोटिफ) की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । राजा यशोधर अपनी रानी के साथ भोग-विलास के हेतु लेटा ही था कि उसे सोया हुआ जान, रानी दासी के वस्त्र पहन महल के बाहर चली गयी । राजा चुपके से उसके पीछे-पीछे चला । उसने देखा कि रानी ने एक सोये पड़े हुए कुरूप और कुबड़े महावत की झोपड़ी मे पहुच उसे हाथ पकडकर जगाया । जागने पर महावत ने क्रुद्ध होकर रानी के देर से आने का कारण पूछा और उसे पीटने लगा । एक हाथ से रानी के वाल खींच, दूसरे हाथ से वह उसे घूंसो से मारने लगा । रानी अमृतमती ने महावत की अनुनय-विनय करते हुए निवेदन किया कि राजा यशोधर के साथ रहते हुए भी वह सदा उसे ही हृदय मे धारण करती रही है । यदि उसका यह

कथन मिथ्या हो तो भगवती कात्यायनी उसे निगल जाये । रानी की यह करतूत देख राजा अपने महल में लौट कर सोने का बहाना करके लेट गया । रानी भी उसके पास आकर सो गयी । अंत में राजा को संसार से वैराग्य हो गया ।[1]

दिगंबर और श्वेतांबर सम्प्रदाय की सामान्य कथाएं

और भी कितनी ही कथा-कहानियां, जिन्हें जैनधर्म का अनविच्छिन्न अंग कहा जा सकता है, दोनों संप्रदायों में सामान्य रूप से पायी जाती हैं । इस प्रकार की कथा-कहानियों के सर्वांगीण अध्ययन के लिए विशेष शोध की आवश्यकता है ।

(१) नागराज धरणेंद्र के कथानक को लें । दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही संप्रदायों में धरणेंद्र को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है । जैन-परंपरा में धरणेंद्र द्वारा अपने फण को छत्र के रूप में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के मस्तक पर फैलाकर उनकी रक्षा किये जाने की मान्यता है । अहिच्छत्र (अहि + छत्र) नाम पड़ने का यही कारण बताया गया है । दोनों ही सम्प्रदायों में धरणेंद्र द्वारा कच्छ और महाकच्छ के पुत्र नमि और विनमि को विविध विद्याएं प्रदान करने का उल्लेख मिलता है । श्वेताम्बर संप्रदाय में तो धरणेंद्र को अपने पुण्य कर्मों के कारण तीर्थंकर पद की प्राप्ति

---

१ - श्वेतांबरीय विद्वान जयसिंहसूरि (ईसा की ९वीं शताब्दी) कृत धर्मोपदेशमाला विवरण (४९-५०) में भी यह कथा कुछ हेरफेर के साथ पाई जाती है । यहां रानी और महावत को देश से निष्कासित कर दिया जाता है । कुछ दूर जाकर रानी महावत को छोड़कर किसी और चोर के साथ भाग जाती है । पार्श्वनाथचरित में महावत का स्थान एक कुबड़े चौकीदार को मिलता है । एम. ब्लूमफील्ड, पार्श्वनाथचरित, द लाइफ एण्ड स्टोरीज् ऑफ द जैन सेवियर, पार्श्वनाथ, १९१९, पृ १९५ । श्वेतांबरीय भक्तपरिज्ञा (१२२) और दिगम्बरीय भगवती आराधना (९४३) में राजा देवरति की रानी गानविद्या में प्रवीण एक लंगड़े के साथ चली जाती है; तथा देखिए बृहत्कथाकोश (८५ देवरति कथानक); हरिभद्रसूरि, समराइच्चकहा (४ २९२), हेमचन्द्र, परिशिष्टपर्व (२.६०६-६११), शुकसप्तति (५-९); कुणालजातक (५३६) । टोडा-कहानी में महावत का स्थान एक अपंग को मिलता है, अन्यत्र एक अंधे और लंगड़े व्यक्ति को, एमेन्यू, स्टडीज़ इन द फोकटेल्स ऑफ इंडिया, ३ जर्नल ऑफ अमेरिकन ओरिएंटियल सोसायटी, ६७; तथा अरेबियन नाइट्स १, कहानी २, १५, प्राकृत नैरेटिव लिटरेचर, ५० इत्यादि ।

बतायी गयी है जबकि दिगम्बर परंपरा में उसे तीर्थंकर श्रेयांसनाथ के गणधर का पद दिया गया है ।

धरणेंद्र का कथानक श्वेतांबरीय संघदासगणि वाचक कृत वसुदेवहिंडि (लगभग ईसा की तीसरी शताब्दी) तथा दिगम्बरीय जिनसेन कृत हरिवंशपुराण (ईसा की आठवीं शताब्दी) और हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश (ईसा की दसवी शताब्दी) मे उपलब्ध होता है । दोनो के कथानकों मे साधारण हेरफेर दिखाई देता है जबकि स्रोत दोनों का एक ही है । वीतशोका नगरी मे राजा संजय (हरिवंशपुराण और बृहत्कथाकोश मे वैजयन्त) अपनी रानी सच्चसिरि (दिगंबर परंपरा मे सर्वश्री) के साथ राज्य करता था । संजयंत और जयंत नाम के उसके दो पुत्र थे । कालांतर मे राजा संजय ने अपने दोनो पुत्रो के साथ श्रमणदीक्षा स्वीकार कर ली । जयन्त मुनि चारित्रमोह के उदय से शिथिलाचार (पार्श्वस्थ) के कारण मरकर धरणेन्द्र की योनि मे पैदा हुए (दिगम्बर परंपरा मे तप करते हुए उन्होने धरणेन्द्र को देखकर दूसरे जन्म मे धरणेन्द्र बनने का निदान किया) । इस बीच जयंत मुनि के ज्येष्ठ भ्राता मुनि संजयंत को तपस्या करते देख, विद्याधर-स्वामी विद्युद्दंष्ट्र उसकी हत्या करने के लिए उसे वैताढ्य पर्वत पर ले आया (दिगंबर परंपरा के अनुसार मुनि मनोहरी नगरी के श्मशान में सात दिन का प्रतिमायोग लेकर ध्यान मे अवस्थित थे । विद्युद्दंष्ट्र वन में अपनी रानियो के साथ क्रीडा करने के पश्चात् अपने घर लौट रहा था) । विद्युद्दंष्ट्र ने अपने अधीनस्थ विद्याधर-राजाओं को सावधान करते हुए कहा : "देखो, यदि बढ़ते हुए उत्पात को रोका न गया तो आगे जाकर यह हमारे नाश का कारण बनेगा । अतएव तुम लोगों को चाहिए कि अपने अस्त्रों के प्रयोग से अविलम्ब इस मुनि की हत्या कर दो, इस कार्य मे जरा भी असावधानी करने की आवश्यकता नहीं ।" (दिगम्बरीय परंपरा मे विद्युद्दंष्ट्र मुनि को पांच नदियो के संगम पर छोड़कर चला गया । अगले दिन प्रातःकाल लौटने पर उसने विद्याधरो को बताया कि उसे रात को स्वप्न मे एक महाकाय राक्षस दिखाई दिया है जो निश्चय ही उनके मरण का कारण

बनेगा, अतएव जितनी जल्दी हो सके, इसकी हत्या कर देना श्रेयस्कर है) ।[1] अपने स्वामी का आदेश पाकर विद्याधर अपने-अपने अस्त्रों से सज्जित हो, मुनि की हत्या करने के लिए तत्पर हो गये ।

इस बीच धरणेंद्र (जयन्त का जीव) ने, जो अष्टापद तीर्थ की यात्रा करने जा रहा था (दिगंबरीय परपरा में निर्वाण-प्राप्त संजयंत मुनि की मृत देह के पूजन के लिए) देखा कि एकत्रित हुए विद्याधर मुनि के प्राण लेने के लिए उद्यत हैं । यह देखकर धरणेंद्र क्रोध से लाल-पीला हो गया और विद्याधरों को उसने धमकाया (दिगंबर परपरा में धरणेंद्र के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और भृकुटिया चढ़ने से वह भीषण दिखायी देने लगा । उसने अपराधी विद्युद्दंष्ट्र को नागपाश से बांधकर उसे बड़वानल में फेंक देने की धमकी दी । इस समय सूर्य की भांति प्रकाशमान लान्तवेंद्र देव ने उपस्थित हो, धरणेंद्र को इस हिंस्र कर्म में लिप्त न होकर शांत रहने का अनुरोध किया । धरणेंद्र ने विद्याधरों को फटकारते हुए कहा : "अरे, ऋषि घातको ! तुम लोग इस भूमंडल पर कैसे उतर आये जबकि तुम्हारा स्थान नभोमंडल में है ? यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है । तुम्हें उचित और अनुचित का ज्ञान नहीं है ।" इन शब्दों के साथ नागराज धरणेंद्र ने विद्याधरों को उनकी विद्याओं से वंचित कर दिया । इसपर विद्याधरों ने अत्यन्त विनयपूर्वक अपना मस्तक नमाकर धरणेंद्र से क्षमा की प्रार्थना की ।[2] लेकिन धरणेंद्र का कोप फिर भी शान्त न हुआ । विद्याधरों को शाप देते हुए उसने कहा : "अब भविष्य में विद्या सिद्ध करने के लिए तुम लोगों को प्रयत्नशील होना पड़ेगा, और जिसे विद्या सिद्ध हो गयी है, यदि वह कदाचित् जैन

---

१. हरिषेण के बृहत्कथाकोश (७८. २३८-४२) से विशेष जानकारी मिलती है • विद्युद्दंष्ट्र ने देवता द्वारा कही बात को दुहराते हुए विद्याधरों को सावधान करते हुए कहा • "पंचनदी-संगम पर, सज्जनों को उद्वेगकारी नग्नमुद्रा में अवस्थित जो मुनि मौजूद है, वह तीन दिन के बाद सब विद्याधरों को खा जायगा । अतएव उस पिशाच के पास पहुंच कर अग्निवर्ण की लौह-शलाकाओं से आदरपूर्वक उसके शरीर का भेदन करना आवश्यक है । पिशाच के समान दिखायी देने वाले भीषण नग्न-रूप धारी उस मुनि को मार डालने के बाद ही विद्याधर-निकाय को शांति मिलेगी ।" यह सुनकर लाल-लाल शलाकाओं द्वारा विद्याधरों ने मुनि के शरीर को भेद किया ।

२. वसुदेवहिंडि, २५१, २५-२५३. २१; जगदीशचन्द्र जैन, 'द वसुदेवहिंडि एन ऑथेंटिक जैन वर्शन ऑफ द बृहत्कथा' पृ ४०४, जिनसेन, हरिवंशपुराण, २७.१३४ ।

चैत्य, किसी साधु-मुनि अथवा दपति की अवहेलना करेगा तो वह विद्या से वंचित हो जायेगा; तथा विद्युद्दष्ट्र के वंश मे महाविद्याएं पुरुषो द्वारा सिद्ध न हो सकेंगीं, उन्हे केवल महिलाए ही सिद्ध कर सकेगीं और वह भी श्रमपूर्वक ।" धरणेद्र ने विद्याधरो को सजयंत मुनि की प्रतिमा स्थापित करने का आदेश दिया ।[१]

स्पष्ट है कि इस कथानक मे किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता का अंश नही जान पडता । दोनो ही संप्रदायो ने परपरागत आख्यान को स्वीकार कर अपने कथानक प्रस्तुत किये है । निश्चय ही इस प्रकार के सर्वसामान्य कथानक जैनधर्म की प्राचीनतम धारा की ओर इंगित करते है जो धारा दिगंबर और श्वेतांबर मतभेद होने के पूर्व अविरत रूप से प्रवाहित होती रही, और जो हमे उत्तराधिकार मे प्राप्त हुई है ।

(२) आइए, विष्णुकुमार मुनि की कथा को ले । विष्णुकुमार दोनो ही सप्रदायो द्वारा जैनधर्म के प्रभावक और जैन श्रमण संघ के रक्षक माने गये है । श्वेताम्बरीय संघदासगणि वाचक कृत वसुदेवहिंडि (१२८, १८-१३२, ३), नेमिचंद्र कृत उत्तराध्ययन वृत्ति (१८, पृ २४५ अ — २४९अ) और कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्र कृत त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चिरत (६, ८, १४-२०३), तथा दिगवरीय जिनसेन कृत हरिवशपुराण (२०, १-६५), गुणभद्र कृत उत्तरपुराण (७०, २७४-३००), हरिषेण कृत वृहत्कथाकोश (११, पृ १८-२२) और पुष्पदंत कृत तिसट्ठि-महापुरिस-गुणालकारु (महापुराण) (३३, १४-२९) मे उक्त कथानक विस्तार से उल्लिखित है ।[२] यहा दिगंबरीय और श्वेताबरीय परंपराओ मे ही नही, बल्कि श्वेतांबर सप्रदाय द्वारा स्वीकृत कथानक की परंपराओ के कतिपय अंशों में भी भिन्नता दिखायी देती है, यद्यपि मूल कथानक एक है । आठवी शताब्दी के प्रकाण्ड दिगम्बर कथाकार **पुन्नाट संघीय आचार्य जिनसेन** ने विष्णुकुमार मुनि के कथानक को दृष्टि को शुद्धताप्रदान करने

---

१. वसुदेवहिंडि, २६४, २०-२५; तुलना कीजिए हरिवंशपुराण, २७, १२८-३४ के वर्णन के साथ । तथा देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, 'द रोल ऑफ धरणेंद्र इन जैन माइथॉलोजी', ऑल इंडिया ओरिटियन्ल कान्फ्रेन्स, ३१ वा अधिवेशन, जयपुर, २९-३१, अक्तूबर, १९८२ ।

२ देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, (क) द वसुदेवहिंडि - ऐन ऑथेन्टिक जैन वर्जन ऑफ द बृहत्कथा, परिशिष्ट ३, पृ ६५८-६९; (ख) 'द एडेप्टेशन ऑफ विष्णु-बलि मोटिफ', स्टडीज इन अर्ली जैनिज्म, पृ १०५, ११०, (ग) प्राकृत कथा साहित्य, पृ १७२-७४, १४६-४७, १५१-५२ ।

वाला (दृष्टिशुद्धिकरीम्) कहा है । कथा के अंत में कथाकार ने लिखा है : जिन शासन में प्रणीत तपो-ऋद्धि के धारक योगियों के लिए कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है । उनके ऋद्धि-बल से अतिशय विशाल मंदर पर्वत भी अपने स्थान से भय के कारण विचलित हो जाता है, वे अपने हथेली के व्यापार से सूर्य और चंद्र को भी गिरा सकते हैं, भीषण ज्वार से क्षुब्ध समुद्रों को भी बिखेर सकते हैं और जो मुक्ति पाने के योग्य नहीं, उन्हें भी मुक्ति दिला सकते हैं (२०, ६५) । मुनि विष्णुकुमार की गणना विशिष्ट ऋद्धिधारी जैन-श्रमणों में की गयी है । उन्हें विकुर्वण ऋद्धि से संपन्न बताया गया है, जिसके बल से वे अपने शरीर को सूक्ष्म-बादर आदि रूपों में परिणत कर सकने में समर्थ थे । उन्हें अन्तर्धानी और गगनगामिनी विद्याएं सिद्ध थी जिससे वे अपने आपको अदृश्य कर सकते थे और नभोगमन करने में समर्थ थे । उल्लेखनीय है कि जैन परंपरा में सलूनो (रक्षाबंधन) के त्यौहार का संबंध मुनि विष्णुकुमार द्वारा लगभग ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी में की गयी जैन मुनियों की उपसर्गजन्य रक्षा के साथ जुड़ा हुआ है ।[1] आजकल भी उत्तरप्रदेशवासी दिगंबर जैनधर्मानुयायियों में यह मान्यता प्रचलित है जिसके उपलक्ष्य में उपसर्ग से पीड़ित मुनियों की खातिर दूध में पकी हुई सेमइयों का मृदु आहार तैयार करने का रिवाज है ।

वसुदेवहिंडि में उल्लिखित विष्णुकुमार मुनि का संक्षिप्त कथानक यहां प्रस्तुत किया जाता है :

हस्तिनापुर में राजा पद्मरथ (उत्तरा. वृत्ति और त्रिषष्टि-शलाका में पद्मोत्तर, गुणभद्रीय उत्तरपुराण में मेघरथ) रानी लक्ष्मीमती (उत्तरा. वृत्ति और त्रिषष्टि में ज्वाला और लक्ष्मी नाम की दो रानियों का उल्लेख) के साथ राज्य करता था । विष्णुकुमार और महापद्म नाम के उसके दो पुत्र थे (उत्तरा. वृत्ति और त्रिषष्टि में विष्णुकुमार और महापद्म जैनधर्मानुयायी ज्वाला के पुत्र थे, लक्ष्मी ब्राह्मण परंपरा की अनुयायिनी थी) । कालान्तर में राजा पद्मरथ और विष्णुकुमार ने श्रमणों की दीक्षा स्वीकार कर ली । मुनि-अवस्था में दीक्षित होकर विष्णुकुमार ने घोर तप किया जिससे वे अनेक ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी बने ।

---

१. देखिए, हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश, मुनि विष्णुकुमार नामक ११वीं कथा ।

एक बार की बात है कि राजा महापद्म का मंत्री नमुचि[1] जैन-श्रमणो के साथ हुए वाद-विवाद में पराजित हो जाने से बहुत क्षुब्ध हुआ । इस बीच मौका पाकर वह कुछ समय के लिए राज्यपद पर आरूढ़ हो गया । उसने जैन-श्रमणों को अपने अभिनंदन के लिए उपस्थित होने का आदेश दिया । इस ओर श्रमणों की उपेक्षा देख, वह उन्हे जान-बूझकर कष्ट पहुंचाने लगा । उसने उन्हे तुरत देश छोडकर चले जाने को कहा । श्रमणो ने चातुर्मास समाप्त होने तक ठहरने की अनुमति चाही; कारण कि वर्षा ऋतु मे पृथ्वी छोटे-छोटे जीव-जन्तुओ से आक्रान्त हो जाती है और ऐसे समय उन्हे एक स्थान छोडकर दूसरे स्थान पर गमन करने की मनाई है । लेकिन नमुचि ने अनुमति देने से इंकार कर दिया । क्षुब्ध होकर उसने कहा- "यदि तुम लोगो मे से कोई भी सात दिन के बाद यहा पाया गया तो वह जिन्दा न बच पायेगा ।"

श्रमणसंघ[2] पर सकट आया जान, ऋद्धिधारी मुनि विष्णुकुमार को वहा आने के लिए आमंत्रित किया गया जो उस समय अंगमदिर पर्वत (उत्तरा. वृत्ति मे गगामंदिर और त्रिषष्टि मे मन्दर) पर तपश्चर्या मे संलग्न थे । श्रमणसंघ पर सकट उपस्थित जान मुनि विष्णुकुमार तुरत ही नभोमार्ग से हस्तिनापुर पहुचे । विष्णुकुमार ने नमुचि से जैन-साधुओ को वर्षा ऋतु समाप्त होने तक नगर मे ठहरने देने का अनुरोध किया । किन्तु उसने उनकी बात सुनी-अनसुनी कर दी ।

जब मुनि विष्णुकुमार ने देखा कि नमुचि अपनी जिद पर अड़ा हुआ है तो मुनि ने उससे तीन पद (विक्रम)[3] प्रदेश मांगा कि साधु वहा अपने प्राणो का त्याग कर सके, क्योंकि वर्षाकाल मे गमनागमन का निषेध है । नमुचि ने कहा, ठीक है, लेकिन

---

१ उत्तरकालीन जैन कथाकार वसुदेवहिंडि की परपरा का अनुकरण न कर ब्राह्मण परपरा का अनुकरण करते हुए पाये जाते है । उदाहरणार्थ, जिनसेन की हरिवंशपुराण में बलि, बृहस्पति, नमुचि और प्रह्लाद नाम के चार मत्रियों का उल्लेख है, जबकि गुणभद्र की उत्तरपुराण मे केवल बलि नामक एक ही मत्री का उल्लेख है । दिगबरीय हरिषेण के बृहत्कथाकोश में भी इन्ही चार मत्रियो के नाम आते है ।

२. वसुदेवहिंडि में यहां 'साधु' शब्द का प्रयोग किया गया है, किन्तु ध्यान देने योग्य है कि क्रमश. ११वी और १२वी शताब्दी के नेमिचन्द्र सूरि और आचार्य हेमचन्द्र नामक श्वेताबर जैन कथाकारों ने अपनी रचनाओं में 'सेयभिक्खु' अथवा 'सेयवड' (श्वेतपट, अर्थात श्वेतांबर साधु) शब्दों का प्रयोग किया है जिससे प्रतीत होता है कि शनै शनै किस प्रकार साम्प्रदायिक भाव जोर पकडता जा रहा था ।

३ (क) हरिवंशपुराण (२०, ४८) में 'पदत्रय' । हरिषेण के बृहत्कथाकोश मे भी तीन पग भूमि याचना करने का उल्लेख है । राजा नमुचि के साथ वार्तालाप होने के पश्चात् विष्णुकुमार अपने स्थान पर लौट आये ।

जितनी भूमि मैंने तुम्हें दी है, उसकी माप-जोख जरूरी है । यह सुनकर रोष से प्रज्वलित मुनि विष्णुकुमार का शरीर बढ़ने लगा । उन्होंने भूमि मापने के हेतु अपना एक विशाल चरण उठाया तो नमुचि भयभीत होकर उनके चरणों में लोट गया । विष्णुकुमार मुनि का विशालकाय शरीर देखकर देवतागण कंपित हो उठे । अपना दायां पैर उन्होंने मन्दर पर्वत पर स्थापित किया ।[1] इन्द्र का आसन चलायमान हो उठा । समस्त प्राणी भय से कंपित हो गये । विष्णुकुमार मुनि को शांत करने के लिए

तत्पश्चात् वामन-रूप धारण कर उन्होंने होम-हवन की शाला में प्रवेश किया । उनके मुख से वेदध्वनि सुनाई पड़ रही थी, और वे माला जप रहे थे । राजा बलि को होमशाला में आसीन देख, वामन-रूपधारी विष्णुकुमार ने उसके समीप उपस्थित हो, तीन पग भूमि की याचना की । बलि ने अतिशय आनन्दपूर्वक भूमि प्रदान करने की घोषणा की और अपने हाथों से जल का अर्घ्य दिया ।
(ख) गुणभद्र अपनी उत्तरपुराण (७०. २७४-३००) में ब्राह्मण परम्परा को और अधिक रूप से स्वीकार करते हुए दिखाई देते हैं । यहांपर बलि यज्ञ करने के बहाने अग्नि प्रज्वलित करता है जिससे जैन साधु धुएं से घिर जाते हैं । इस समय विष्णुकुमार वामन-रूप बनाकर बलि से दान की याचना करते हैं । वामन-रूपधारी विष्णु को उपस्थित जान विनयावनत बलि उन्हें मुंह-मांगा दान देने के लिए उद्यत हो जाता है, किन्तु वे इतनी ही भूमि की याचना करते हैं जहां वे अपने तीन पग रख सकें ।
(ग) उल्लेखनीय है कि जैन कथाकारों द्वारा उल्लिखित विष्णुकुमार मुनि की कथा ब्राह्मण-परंपरा में सुप्रसिद्ध वामन-रूपधारी विष्णु भगवान की कथा से बहुत सादृश्य रखती है । यहां बलि एक शक्तिशाली दैत्य बताया था गया है जो प्रह्लाद का प्रपौत्र और विरोचन का पुत्र था । देवताओं को यह बहुत कष्ट देता था । आखिर देवताओं ने भगवान विष्णु के पास पहुंचकर उनसे रक्षा की प्रार्थना की । इसपर विष्णु वामन अवतार धारण कर पृथ्वी पर अवतरित हुए । साधु के वेश में दैत्यराज बलि के पास पहुंच, उन्होंने तीन पैर रखने लायक भूमि की याचना की । बलि अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध था, उसने वामन रूप-धारी ब्राह्मण को भूमि दे दी । इस परंपरा में अपने तीन पगों द्वारा तीन लोक में घूम जाने के कारण विष्णु को त्रिविक्रम नाम से संबोधित किया गया है ।

१. (क) जिनसेन की हरिवंशपुराण के अनुसार विष्णुकुमार ने एक पग मेरु पर्वत पर और दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर रक्खा, और जब तीसरा पग रखने के लिए कोई स्थान बाकी न रहा तो वह पग आकाश में (हरिषेण के बृहत्कथाकोश के अनुसार, इस समय विष्णुकुमार ने बलि से कहा - "बोल, अब यह तीसरा पग कहां रक्खूं तूने तीन पग भूमि देने का वचन दिया था) " अधर में घूमता रहा । यह देखकर तीनों लोकों में क्षोभ मच गया । गंधर्वदेव अपनी-अपनी देवियों समेत एकत्र हो, मनोहर गीत गाने लगे । श्रुतिमधुर गांधर्व वीणाओं द्वारा देवों और विद्याधरों ने तथा आकाश में *विचरण करने वाले ऋद्धिधारी चारण मुनियों ने सिद्धांत-गीतिका के गीतों द्वारा मुनि को किसी-न-किसी तरह शांत किया जिससे विष्णुकुमार मुनि अपनी वैक्रियक ऋद्धि को समेट स्वभावस्थ हो गये ।*
(ख) ब्राह्मण परंपरा में वामन-रूपधारी विष्णु भगवान को तीन पग भूमि दिये जाने का वचन मिलने के पश्चात् पहला पग उन्होंने पृथ्वी पर रक्खा; दूसरे से समस्त आकाश मंडल को ढक लिया; और अब तीसरा पग रखने के लिए कोई स्थान न मिला तो उन्होंने उसे बलि के सिर पर स्थापित कर दिया ।

स्वर्ग की अप्सराए नृत्य करने लगी और गधर्वगण सुरीले स्वरो मे गीत गाने लगे । विद्याधर भी इस समारोह मे सम्मिलित होकर विष्णुकुमार की प्रशंसा मे स्तोत्रपाठ करने लगे । यह देखकर विद्याधरो से प्रसन्न हो गंधर्व देवो ने उन्हे विष्णुगीति' प्रदान की । नमुचि को देश से बहिष्कृत कर दिया गया ।

(३) यव (यम) मुनि की कथा

यव मुनि की कथा काफी प्राचीन जान पडती है । यह कथा केवल दिगबरो और श्वेताबरों के ही प्राचीन ग्रथो मे नही पाई जाती, बौद्धो की जातक कथाओ मे भी

---

१. (क) हरिवशपुराण मे 'सिद्धान्त-गीतिका' शब्द का प्रयोग किया गया है । इसका अर्थ अनुवादक द्वारा 'सिद्धातशास्त्र की गाथाओं' किया गया है जो ठीक नही जान पड़ता ।

(ख) यह गीतिका निम्न प्रकार से है
उवसम साहुवरिया न हु कोवो वण्णिओ जिणिंदेहिं ।
हुंति हु कोवणसीलया पावती बहूणि जाइयव्वाइं ॥- वसुदेवहिंडि. १३१. १-२

- हे साधुओ मे वरिष्ट, शात होइये । जिनेंद्र भगवान ने क्रोध को प्रशस्त नहीं कहा । जिनका स्वभाव क्रोध करने का है, उन्हें इस ससार मे अनेक जन्म धारण करने पड़ते है ।

जिनसेनीय हरिवशपुराण (२०.५७) मे भी इसी प्रकार की उक्ति है
संक्षोभ मनसो विष्णो प्रभो सहर सहर ।
तप प्रभावस्तेऽद्य चलित भुवनत्रयम् ॥

- हे विष्णु प्रभु, मन के क्षोभ को दूर कीजिए । आपके तप के प्रभाव से तीनों लोक चलायमान हो उठे है !

ग) बुधस्वामी (लगभग ईसवी सन् की चौथी शताब्दी) के बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में भी लगभग यही वर्णन प्रस्तुत है, अंतर इतना ही है कि यहा वसुदेव के स्थान पर नरवाहनदत्त, चारुदत्त के स्थान पर सानुदास और विष्णुगीति के स्थान पर नारायण-स्तुति (सोमदेव के कथासरित्सागर, १०६, १२. १८ में वैष्णव-स्तुति अथवा केशव-स्तुति, क्षेमेंद्र की बृहत्कथामजरी, १३. ७१ मे विष्णु-स्तुति) का उल्लेख है । बृहत्कथाश्लोकसग्रह (१७, ११२-१६) में कहा गया है : " पुरातनकाल में चक्र के धारक विष्णु भगवान बलि नामक दैत्य का मान खंडन करने के लिए वामन रूप धारण कर अपने तीन पगों द्वारा आकाश पर छा गये ।" कहना न होगा कि जैन रचना वसुदेवहिंडि की भांति बृहत्कथा श्लोकसग्रह, कथासरित्सागर और बृहत्कथामजरी भी कवि गुणाढ्य की नष्ट हुई, सुप्रसिद्ध पैशाची कृति बड्डकहा (बृहत्कथा) के रूपातर जान पड़ते है । विशेष के लिए देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, द वसुदेवहिंडी ऐन ऑथेण्टिक जैन वर्जन ऑफ द बृहत्कथा ।

बोधिसत्व के साथ इसका संबंध जुडा है । यहां लौकिक वस्तुओं की उपमाओं द्वारा कहानी विकसित हुई है जिसे धार्मिक ढांचे मे ढालकर रोचक बनाया गया है । मूलत: कहानी के चार पात्र है - जव (जव राजा; जौ का खेत), अणोलिका (राजा की कन्या, गिल्ली अथवा मूषिका), गर्दभ (राजा का पुत्र, गधा) और दीर्घपृष्ठ (राजा का मंत्री; सर्प) । दिगंबरीय परंपरा मे यह कहानी आचार्य शिवकोटि कृत भगवती आराधना (७७१), हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश (६१), और रामचद्र मुमुक्षु कृत पुण्यास्रवकथाकोश (२०), तथा श्वेतांबर परंपरा मे भत्तपरिण्णा (८७), संघदासगणि क्षमाश्रमण कृत बृहत्कल्पभाष्य (१-११५४-६०) और विजयलक्ष्मीकृत उपदेशप्रासाद (३-२१४, पृ. ७१-९२अ) मे पाई जाती है । बौद्धो के मूसिक जातक (३७३) मे भी यह उल्लिखित है । भगवती आराधना मे अत्यन्त संक्षिप्त रूप में एक गाथा मे कहा गया है : "यदि श्लोक के एक खंड के पाठ से राजा यम मृत्यु से बचा रह सकता है तो फिर जिन भगवान द्वारा प्रतिपादित सूत्र के स्वाध्याय से कौनसे फल की प्राप्ति नही हो सकती ?" स्पष्ट है कि इस कहानी द्वारा श्रुत-स्वाध्याय की उपयोगिता पर जोर दिया गया है ।

आचार्य अपने किसी दुराग्रही शिष्य को उपदेश देते हुए कह रहे है :

मा एवं असग्गाहं गिण्हसु, गिण्हसु सुयं तइय-चक्खुं ।

किंवा तुमेऽनिलसुओ न स्सुय-पुव्वो जवो राया ॥ (बृहत्कल्पभाष्य ११५४)

— दुराग्रह मत करो, तीसरे नेत्र श्रुत को ग्रहण करो । क्या तुमने अनिल के पुत्र राजा यव का आख्यान नहीं सुना ?

राजा यव कौन था ? उसका आख्यान क्या है ? इसके उत्तर मे कहा है :

जव राय, दीहपट्ठो सचिवो, पुत्तो य गद्दभो तस्स ।

धूया अडोलिया, गद्दभेण छुढा य अगडम्मि ॥ (बृ. भा. ११५५)

---

१. बृहत्कथाकोश और पुण्यास्रवकथाकोश में कोणिका तथा उपदेशप्रासाद में अर्गुल्लिका ।

— जब राजा था, उसका मंत्री दीर्घपृष्ठ था, उसके पुत्र का नाम था गर्दभ, अडोलिया[1] उसकी पुत्री थी, गर्दभ ने उसे एक बिल मे रख दिया था ।[1] तत्पश्चात् -

पव्वयणं च नरिन्दे, पुणरागममडोलि-खेलणं च वेडा ।

जव-पत्थणं खरस्सा, उवस्सओ फरुस-सालाए ॥ (बृ. भा. ११५६)

— जब राजा ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली ।[2] अपने पुत्र गर्दभ के कारण वह बीच-बीच मे उज्जैनी नगरी में आता रहता था । बालक अडोलिया (गिल्ली) से खेल रहे हैं । गधा (गर्दभ) जौ (जव) चरना चाहता है । यव राजा कुम्हार की शाला में ठहरा हुआ है ।

अगली गाथाओं मे कथा का शेष भाग विस्तारपूर्वक कहा गया है ।

ये गाथाए (श्लोक) मूसिक जातक, बृहत्कथाकोश, पुण्यास्रवकथाकोश और उपदेशप्रासाद मे मिलती है । इनसे कहानी की जानकारी प्राप्त होती है ।

बृहत्कल्पभाष्य की परंपरा का अनुसरण करने वाले उपदेशप्रासाद मे यह कथा निम्न प्रकार से दी हुई है :

"प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् यव मुनि घोर तप करने लगे । किन्तु गुरु के द्वारा आग्रह किये जाने पर भी वे श्रुत का अध्ययन न करते । उनका उत्तर होता कि वे वृद्ध हो गये है, अतएव उनका ध्यान श्रुत मे केंद्रित नहीं हो पाता । एक बार की बात है, गुरुजी ने यम मुनि को अपने पुत्र गर्दभ को प्रबुद्ध करने के लिए उज्जैन भेजा । मार्ग में जाते-जाते उनके मन मे विचार आया, "मुझे थोड़ा भी श्रुतपाठ नही आता, फिर मैं अपने पुत्र तथा दूसरे लोगो को क्या उपदेश दूंगा ?" इस बीच यव (जौ) के खेत में

---

१ राजकुमारी कोणिका के संबंध में किसी निमित्तज्ञ ने भविष्यवाणी की थी कि जिस व्यक्ति के साथ इसका विवाह होगा, वह निष्कंटक होकर पृथ्वी पर राज्य करेगा । इस कारण यम राजा ने अडोलिया को भूमिगृह में रख दिया था (बृहत्कथाकोश और पुण्यास्रवकथाकोश) । उपदेशप्रासाद में मंत्री दीर्घपृष्ठ द्वारा अणुल्लिका को भूमिगृह में छिपाने का कारण था कि वह राजा गर्दभ की हत्या कर अपने पुत्र को राज्य पर बैठाकर अणुल्लिका को अपनी पुत्रवधु बनाना चाहता था ।

२. बृहत्कल्पभाष्य के अनुसार जब राजा को जब अडोलिया का कुछ पता न चला और लोगों ने समझा कि वह कहीं चली गयी है तो उसने प्रव्रज्या स्वीकार कर ली । उपदेशप्रासाद में कहा गया है कि राजा के मन में विचार आया कि पूर्वभव में पुण्य कर्मों के कारण ही मुझे राजा का पद प्राप्त हुआ है, अतएव आगामी भव को प्रशस्त बनाने के लिए उसने प्रव्रज्या ले ली ।

यव खाने की इच्छा से चरते हुए किसी गर्दभ (गधे) को देखकर[1] क्षेत्रपाल ने निम्न गाथा पढ़ी :

> ओहावसि पहावसि ममं चेव निरिक्खसि ।
> लक्खिओ ते अभिप्पाओ जवं पत्थेसि गद्भा ॥[2]

— तू इधर दौड़ता है, उधर दौड़ता है, तू मुझे ही देख रहा है । मैंने तेरे मन के भाव को ताड़ लिया है । हे गर्दभ, तू यव (जौ) खाना चाहता है । (इसी गाथा का दूसरा अर्थ : यव राजा का पुत्र गर्दभ अपने मंत्री दीर्घपृष्ठ के बहकावे में आकर यव मुनि की हत्या करने के लिए आया है । मुनि को देखकर कभी इधर दौडता है, कभी उधर । मुनि की हत्या करने के लक्ष्य से गर्दभ का ध्यान उसी की ओर रहता है । गर्दभ के मनोभाव का यम मुनि को पता चल गया है कि वह उसे मारने के हेतु वहां आया है) ।

क्षेत्रपाल के मुंह से यह गाथा सुनकर यम योगी ने सोचा, यह मुझे एक अमोघ शस्त्र मिल गया है । महाविद्या की भांति इसका स्मरण करना ठीक होगा । इस समय गांव के बाहर गिल्ली-डंडा खेलते हुए बालकों में से किसी ने लकड़ी की अणुल्लिका (गिल्ली) फेंकी जिसे बालकों ने छिपा लिया । यह देखकर उनमें से एक बालक कहने लगा :

---

१. बृहत्कथाकोश और पुण्याश्रवकथाकोश के अनुसार, कोई गाड़ीवान गधागाड़ी हांककर ले जा रहा था; गाड़ी में दो गधे जुते हुए थे । गाड़ी जौ के खेत से होकर जा रही थी । गधे जौ खाने को झपट रहे थे और गाड़ीवान गधों की रास खींचकर उन्हें रोक रहा था ।

२ (क) आधवसो पधावसो, ममं वा वि निरिक्खसि
लक्खिओ ते मया भावो जवं पत्थेसि गद्भा ॥ (बृ भा. ११७)

(ख) कड्डुमि पुण निस्सेवसि, रे गद्दहा जवं पत्थेसि खादिदुं । (पुण्याश्रवकथाकोश, २०.५ १०५)

(ग) तरामाकर्षणोऽसि त्वं भूयो पि प्रतिकर्षणः ।
लक्षितस्ते मया भावो यवं गर्दभ याचसे ॥ बृ कथाकोश, ६१. २४)

- हे गर्दभ, तुम्हारा आकर्षण ठीक है, परन्तु फिर तुम पीछे हट जाते हो । मुझे तुम्हारे मनोभाव का पता लगा है, तुम यव (जौ) की याचना करते हो ।

(घ) यपेत इति चाति च गद्रभो व निरनसि,
उदपाने मूसक हन्त्वा यव भक्खेतुं इच्छसि । (मूसिक जातक)

अओ गया, तओ गया जोइज्जंती न दीसइ ।

अम्हे न दिट्ठी तुम्हे न दिट्ठी अगडे छूढा अणुल्लिया ॥[1]

— वह यहां गई, वहां गई, ढूंढने पर भी कहीं दिखाई नहीं पडती । उसे न तुमने देखा है, न हमने, वह बिल में पड़ी है । (इसका दूसरा अर्थ : राजा की पुत्री अणुल्लिया को सब जगह ढूंढ़ा, पर कहीं भी उसका पता न चला । वह भूमिगृह में थी) ।

यम योगी ने इस गाथा को भी याद कर लिया । पुनः पुनः इसका पाठ करते हुए उसने उज्जैनी नगरी में प्रवेश किया । वहां पहुंच कर वह एक कुम्हार की शाला में ठहर गया ।

इस समय एक मूषक[2] को इधर-उधर दौडते हुए देख कुम्हार ने निम्न गाथा पढ़ी :

सुकुमालय कोमल भद्दलया तुम्हे रत्ति हिंडण सीलणया ।

अम्ह पसाओ नत्थि ते भयं दीहपिट्ठाओ तुम्ह भयं ।[3]

---

१ - (क) इओ गया, इओ गया । मग्गिजन्ती न दीसइ ।
अह एय वियाणामि अगडे छूढा अडोलिया ॥ (बृ भाष्य, ११५८)
(ख) अण्णत्थ किं पलोवह तुम्हे
एत्थम्मि निबुड्डिया छिद्दे अच्छइ कोणिया । - पुण्यास्रव, २०, १०५
(ग) आधावन्त. पधावन्त. सधावन्तो मतं मया ।
मन्दबुद्धि समायुक्ताश्छिद्रे पश्यत कोणिकाम् ॥ - बृ क. कोश, ६१, २७
- मदबुद्धि कुमारों को मैंने इधर-उधर दौड़ते-भागते देखा है । छिद्र में पड़ी हुई कोणिका को देखो ।
(घ) कुहिं गता कत्थ गता ? इति लालप्पति जनो ।
अहमेव एको जानामि उदपाने मूसिका हता । - मूसिक जातक

२ - बृहत्कथाकोश और पुण्यास्रवकथाकोश में दर्दुर । मूसिक जातक में भी मूषक । बृहत्कथाकोश (भाग २) के अनुवादक पं. राजकुमारजी शास्त्री साहित्याचार्य ने अपने अनुवाद में वानर का उल्लेख किया है, जो ठीक नहीं लगता । कथा से संबंधित श्लोकों का अर्थ भी ठीक नहीं दिया गया । (प्रकाशक भारतीय दिगंबर जैन संघ, मथुरा, वि. सं. २४७७)

३ - (क) सुकुमालग भद्दलग, रत्तिं हिंडण सीलगा,
भय ते नत्थि म-मूला दीहपट्ठाओ ते भयं ॥ बृ भाष्य, ११५९

— तुम सुकुमार हो, कोमल हो, भद्र हो, रात्रि के समय घूमना-फिरना तुम्हारा स्वभाव है । तुम्हे हमसे भय नहीं है, भय है दीर्घपृष्ठ से । (दूसरा अर्थ : चूहे को सुकुमार, कोमल, भद्र और रात्रि के समय घूमने-फिरने वाला कहा गया है; उसे सर्प (दीर्घपृष्ठ) से भयभीत रहने को कहा है) ।

यम योगी उक्त तीनों गाथाओं को कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और कामधेनु की भांति समझकर इनका पुन. पुनः पाठ करने लगा ।

दीर्घपृष्ठ मंत्री द्वारा राजा की बहन अणुल्लिका को भूमिगृह मे छिपाकर रखने की बात पहले कही जा चुकी है । राजा के भटो द्वारा बहुत खोजे जाने पर भी उसका कोई पता नहीं लग रहा था ।[१]

(ख) अम्हादो नत्थि भय दीहादो दीसदे भय तुज्झ । - पुण्यास्रव, वही

(ग) विषागनालशीताग संध्याया मा व्रज क्वचित्
बुभुक्षाग्रस्तधितस्कादीर्घातो दृश्यते भयं ॥ - बृ कथाकोश, ३०

— हे दुर्दर, कमलनाल की भांति शीत सध्या में तू कही मत जा । तुझे भूख से व्याकुल सर्प से भय है ।

(घ) दहरो च सि, दुम्मेध, पठं उप्पतितो सुगु,
दीघं एत समासज्ज न ते दस्सामि जीवितम् । - मूसिक जातक

— जैसे कि नया शिशु जागकर खड़ा होता है, तुम अभी बालक (चूहा) हो, समझ कम है । जब तक तुम इस दीर्घ (सांप) मे लटके हुए हो, तुम्हारे जीवन को मैं रक्षित नही समझता ।

१. बृहत्कथाकोश में यहां कुछ और भी रोचक सामग्री उपलब्ध है : यम योगी जब किसी गांव में से होकर जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि पत्थर की सीढ़ियो वाली एक विशाल बावड़ी में गोल-गोल गड्ढे बने हुए है । पानी के घड़े ले जाती हुई किसी पनिहारिन से उन्होंने ये गड्ढे के पड़ने का कारण पूछा । पनिहारिन ने उत्तर मे कहा "महाराज, पानी भरने वाली नगरवधूटी यहां जल से पूर्ण अपने घड़े रखती है जिससे ये गड्ढे पड़ गये हैं । यह प्रथा बहुत समय से चली आ रही है ।" यह सुनकर योगिराज ने निम्नलिखित श्लोक पढ़ा :

> स्थिता गच्छताऽनेन मृदुना कठिनोऽपि च
> भिन्नो प्रावापि कालेन नित्यायेन घटेन रर ॥

— देखो, रोज रखे हुए और रखकर उठाये जाते हुए कोमल घट ने समय पाकर कठोर पत्थर को भी भेद दिया ।

यह देखकर योगी के मन में विचार उदित हुआ : "क्या मेरे कान इस पत्थर से भी कठोर हैं जो कर्मबंध और मोक्ष को दिखाने वाले अपने गुरु का सान्निध्य छोड़, मैंने अशुद्ध धर्म धन्ने और अनुचित एकाकी विहार का आश्रय लिया है ?" यह सोचकर वे अपने गुरु के पास लौट गये ।

इस समय यम मुनि का उज्जैनी मे आगमन सुनकर मंत्री दीर्घपृष्ठ के मन मे विचार आया : "अपने तप द्वारा ज्ञान से सम्पन्न यव मेरे मन की बात जानकर उसे अपने पुत्र राजा गर्दभ से कह देगा । इससे राजा मेरे कुल समेत मेरा निग्रह करेगा, अतएव अनागत का उपाय ही ठीक है ।" यह सोचकर वह रात को राजा गर्दभ से भेट करने उसके महल मे पहुंचा । विना अवसर के ही रात-बीते मंत्री को उपस्थित देख गर्दभ ने उसके आने का कारण पूछा । मंत्री ने उत्तर दिया, "देखिए महाराज, व्रत से भग्न हुए आपके पिता नगरी मे पधारे है । कुम्हार की शाला मे ठहरे हुए है । आप शायद नही जानते, उनकी नजर आपके राज्य पर है ।" यह सुनकर राजा ने कहा, "यह तेरा मेरा अहोभाग्य है कि मेरे पिता जी मेरा राज्य लेने पधारे है । उनके चरणो की सेवा करके मैं अपना जन्म सफल करूंगा ।" "लेकिन महाराज, अपना राज्य उन्हे सौप देना उचित नही । राजा कूणिक (अजातशत्रु) ने जैसे अपने अन्यायी पिता का वध किया था, वैसे ही आपको भी अपने पिता का वध करना होगा" - मत्री ने उत्तर मे कहा ।

इस प्रकार मत्री द्वारा अनेक युक्ति-प्रयुक्तियों द्वारा समझाये जाने के बाद राजा गर्दभ उसी रात को अपने पिताका वध करने हाथ मे खड्ग लेकर चल पड़ा । कुम्हारशाला मे पहुंच, किवाड़ो के छिद्र मे से उसने अपने पिता यम मुनि को देखा । उस समय वे निम्न गाथा का पाठ कर रहे थे :

ओहावसि पहावसि ममं चेव निरिक्खसि ।
लक्खिओ ते अभिप्पाओ जवं पत्थेसि गद्दभा ॥

— तू इधर दौड़ता है, उधर दौड़ता है, मुझे देख रहा है । तेरे अभिप्राय को मैं समझ गया हूं । हे गर्दभ, तू यव को मारने की इच्छा रखता है ।

यह गाथा सुनकर गर्दभ सोचने लगा, अरे, इसे तो अपने ज्ञान द्वारा सब पता चल गया है । फिर मन ही मन कहने लगा, " यदि सचमुच वह ज्ञानी है तो मेरी बहन के बारे मे भी कुछ-न-कुछ अवश्य कहेगा ।"

इस समय यम मुनि के मुख से दूसरी गाथा सुनाई पड़ी :

"अओ गया, तओ गया जोइज्जंती न दीसइ ।
अम्हे न दिट्ठी तुम्हे न दिट्ठी अगडे छूढा अणोलिया ।"

— वह यहां गई, वहा गई, ढूंढने पर भी कही दिखाई नही पड़ती । उसे न तुमने देखा है, न हमने; वह भूमिगृह में डाल दी गयी है ।

यह सुनकर गर्दभ को विश्वास हो गया कि उसके पिता सचमुच ज्ञानी हैं ।

अब गर्दभ सोचने लगा , "चलो, यह तो ठीक हुआ । किन्तु मैं तो तब जानूं, यदि यह साधु उस व्यक्ति का नाम भी बता दे जिसने मेरी बहन को तलघरे मे छिपा रक्खा है ।

अब की बार एक और गाथा यव मुनि के मुख से सुनाई दी ·

"सुकुमालय कोमल भद्दलया तुम्हे रत्तिहिंडणसीलया
अम्ह पसाओ नत्थि ते भयं दीहपिट्ठाओ ते भय ॥"

— तुम सुकुमार हो, कोमल हो, भोले हो । रात को घूमने-फिरने का तुम्हारा स्वभाव है । तुम्हें हमसे भय नही है, भय है दीर्घपृष्ठ से ।

यह सुनकर गर्दभ का सन्देह भग्न हो गया । शाला का द्वार खोलकर, अपने ज्ञानवान पिता की हत्या करने के हेतु उपस्थित हुआ गर्दभ अपने कृत्यों की निन्दा करता हुआ, मुनि को नमस्कारपूर्वक अपने अपराधो की क्षमा मांगने लगा ।

राजा गर्दभ अपने घर लौट आया । अपनी बहन अडोलिया को भूमिगृह से बाहर निकलवाया । दीर्घपृष्ठ मंत्री को देश से निर्वासित कर दिया गया ।

यव ऋषि गुरु के पास पहुंचे । आलस्य त्यागकर वे विनयान्वित भाव से नित्य नियमपूर्वक श्रुत का पाठ करने लगे । कालान्तर मे तपस्या मे लीन हो मोक्ष की प्राप्ति की ।

बौद्धों के मूसिक जातक में भी यह कथा उल्लिखित है । इस कथा मे बोधिसत्व ब्राह्मण अध्यापक है, राजकुमार यव अध्यापक का विद्यार्थी है । राजकुमार यव कालांतर मे राजपद प्राप्त करता है । उसका पुत्र उसे मारने की धमकी देता है । उसके खतरे को दूर करने के लिए बोधिसत्व तीन गाथाओं का पाठ करता है ।

कोई चूहा किसी घायल हुए घोड़े के पैर को कुतर-कुतर कर खाता है । घोड़ा अधिक दुःख सहन न कर सकने के कारण चूहे को मारकर कुएं मे डाल देता

है । घोड़े का मालिक चूहे की खोज मे जाता है । केवल वोधिसत्व व
कि वह कुएं में मरा पड़ा है । वोधिसत्व पहली गाथा का पाठ करता है .

"कुहिं गता कत्थ गता ? इति लालप्पति जनो
अहमेको विजानामि उदपाने मूसिका हता ।

घोडा यव चरना चाहता है । यह वात वोधिसत्व को एक छेद
पता लग गयी । उसने दूसरी गाथा पढ़ी :

यथेत इति चीति च गद्रभो व निवत्तसि
उदपाने मूसक हत्वा यवं भक्खेतु इच्छसि ।

उक्त दोनो गाथाए द्वयर्थक है ।

राजा यव का पुत्र अपने पिता की हत्या करना चाहता है । मूि
कोई नौकरानी, एक साक्षी के रूप मे, राजा के पहले ही सरोवर की सफा
दी गयी थी । वह राजकुमार द्वारा मारकर फेंक दी गयी । इधर जो लं
मूषिका पर आश्चर्य कर रहे थे । राजा सरोवर पर जाकर पहली गाथा क
है :

कुहि गता कत्थ गता ? इति लालप्पति जनो
अहमेव एको जानामि उदपाने मूसिका हता ।

राजकुमार को पता है कि राजा यव को उसकी गलती का प
है । कुछ दिन पश्चात् किसी गलत सलाह देने वाले व्यक्ति के प्रभाव मे
राजा की हत्या करने के लिए उसपर आक्रमण करता है । एक सं
रखकर वह खड़ा होता है । एक तेज तलवार हाथ में लिये राजा को मा
प्रतीक्षा मे है । इस समय राजा दूसरी गाथा पढ़ता है :

यथेत इति चीति च गद्रभो व निवत्तसि
उदपाने मूसकं हत्वा यवं भक्खेतुं इच्छसि ।

वोधिसत्व यव राजा को सूचना देता है, जबकि राजकुमार उसे द
अंदर एक लम्बे डण्डे से मार डालना चाहता है । इस समय राजा तीसर
पाठ करता है :

दहरो च सि दुम्मेध पठं उप्पत्तितो सुसु

दीघ एतं समासज्ज न ते दस्सामि जीवितं ।

राजकुमार क्षमा याचना करता है । राजकुमार को बांधकर कारागृह मे ले जाया जाता है । राजा निम्नलिखित गाथाओं का पाठ करता है :

(१) अंतलिक्खभवनेन नंग-पुत्त सिरेन वा

पुत्तेन हि पत्थयितो सिलोकेहि पमोचितो

— अंतरिक्ष के भवन द्वारा नहीं, मेरे अंग के द्वारा भी नहीं । पुत्र द्वारा प्रार्थित हुआ मैं श्लोक के द्वारा प्रमुक्त हो गया ।

(२) सव्वं सुत्तं अधीयेथ हीन उक्कट्ठ-मज्झिमं

सव्वस्स अत्थं जानेय्य न च सव्वं पयोजये

होति तादिसको कालो यत्थ अत्थावहं सुतं [१]।

— समस्त सुत्रों का अध्ययन करो, भले ही वे हीन, उत्कृष्ट या मध्यम हों । सबके अर्थों को हृदयंगम करो । सबको उपयोग में लेना आवश्यक नहीं । कभी ऐसा भी समय आता है जब सूत्रों का अध्ययन सार्थक होता है ।[२]

---

१. तुलना कीजिए:
सिक्खियव्वं मणूसेण अवि जारिस-तारिसं ।
पेच्छ मुद्ध-सिलोगेहि जीवियं परिरक्खियं ॥ - बृ. भाष्य १, ११६०
- जैसे भी हो, मनुष्य को शिक्षा अवश्य प्राप्त करना चाहिए । देखो, मुग्ध श्लोकों के पाठ द्वारा जीवन की रक्षा हो गयी ।

२. इस संबंध में प्रो. डाक्टर एडेलहाइड मेटे ने "स्टूडिएन त्सुम जैनिस्मुस उन्ड बुद्धिस्मुस - गेडेन्कश्रिफ्ट फ्यूर लुडविग आल्सडोर्फ" विशेषांक (वीसबाडेन, १९८१) में 'आइने बिर्गीस्टर्श पारालेले त्सुम मूसिक-जातक' नामक एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया है । यहा बृहत्कल्पभाष्य और मूसिकजातक की गाथाओं की कथावस्तु का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उन्होंने बताया है कि इन गाथाओं में प्रयुक्त अनुष्टुप् छंद के प्रारंभिक रूप का द्योतक होने से इन्हें प्राचीन काव्य का अंश समझना चाहिए ।

वसुदेवहिंडि और हरिषेणीय बृहत्कथाकोश की सामान्य कथाएं

संघदासगणि वाचक कृत, गुणाढ्य की वृहत्कथा के अनुकरण पर लिखित वसुदेवहिडि श्वेतांवर परम्परा द्वारा मान्य प्राचीन कथा-कहानियो की महत्वपूर्ण रचना है । इस कथा-सग्रह की कितनी ही कहानियां दिगम्बर-मान्य, कथाकोश-परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी, पुन्नाट (कर्णाटक प्रदेश का प्राचीन नाम) संघीय हरिषेण-कृत वृहत्कथाकोश मे उपलव्ध होती हैं । इससे हमारे उक्त कथन का ही समर्थन है कि दोनो सम्प्रदायो का परपरागत स्रोत एक था । पाठकों की जानकारी के लिए इस प्रकार की कतिपय कथाओ का यहां उल्लेख किया जाता हैं ।

(१) चारुदत की कथा

वसुदेवहिंडि में चारुदत्त को चंपा के श्रमणोपासक भानू श्रेष्ठी का पुत्र कहा हैं । आकाशगामी चारु नामक अनगार की भविष्यवाणी के अनुसार जन्म होने के कारण उसका नाम चारुदत रक्खा गया ।[१] चारुदत की कथा श्वेताम्बरीय उत्तराध्ययनसूत्र के टीकाकार नेमिचन्द्रसूरि कृत आख्यानमणिकोश (२३, २१३ आदि), आचार्य हेमचन्द्र कृत त्रिपष्टिशलाका -पुरुष-चरित (८-२-२११-३०२) और मलधारि हेमचंद्र कृत भवभावना (१८३३-१९२२) मे, तथा दिगंवरीय शिवार्य कृत भगवती आराधना (१०७६), जिनसेन कृत हरिवंशपुराण (२१-७५-१५२), हरिषेण कृत वृहत्कथाकोश (९३, ६४-२७०) और रामचन्द्र मुमुक्षु कृत पुण्यास्रवकथाकोश (१२-२३, पृ. ६५) मे उपलब्ध है । वसुदेवहिंडि मे उल्लिखित और वृहत्कथाकोश मे उल्लिखित कथावस्तु में साधारण हेरफेर पाया जाता है ।[२] बुधस्वामी के श्लोक-संग्रह में भी चारुदत्त की कथा वर्णित है, लेकिन यहां चारुदत्त के स्थान पर सानुदास का नाम आता है । अरेबियन नाइट्स मे भी प्रकारान्तर से यह कथा पाई जाती है जिससे पता चलता हैं कि भारत की कथाओ ने दूर-दूर की यात्रा की हैं । प्रस्तुत

---

१ वृहत्कथाश्लोकसग्रह में सानु नामक किसी दिगंबर मुनि के सबध से सानुदास नाम का सस्करण किया गया ।

२. तुलना के लिए देखिए, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ १७५.

लेखक की मान्यता के अनुसार, यह कथा मूल रूप में गुणाढ्य की बृहत्कथा में विद्यमान रही होनी चाहिए, वहीं से वसुदेवहिंडि कथासरित्सागर, बृहत्कथा श्लोक-संग्रह आदि कथा-ग्रंथो में संकलित की गई है ।

(२) मृगध्वजकुमार और भद्रक महिष की कथा

यह कथा भी प्राचीन है । जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने अपनी कृति विशेषणवती (रचना ६१० ई.) में इस कथा का परिचय प्राप्त करने के लिए वसुदेवचरिय (वसुदेवहिंडि) का नामोल्लेख किया है । यह कथा वसुदेवहिंडी (२६८, २७-२७९, १२) के अतिरिक्त, जिनसेन कृत हरिवंशपुराण (२८, १५-५१; २९.१-८) और हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश (१२१) मे भी मिलती है । तीनों विवरणो मे थोड़ी-बहुत साधारण भिन्नता दिखायी पड़ती है । वसुदेवहिंडि मे कामदेव श्रेष्ठी के द्वारा जनमानस के प्रबोध के हेतु, भगवान मृगध्वज के आयतन में भगवान की प्रतिमा स्थापित कर, उनके समक्ष तीन पैरयुक्त महिष की आकृति वाले लोहित यक्ष की प्रतिमा के निर्माण किये जाने का उल्लेख है । हरिवंश पुराण में जैनत्व की प्रचुरता दिखाई पड़ती है । यहां जिन मंदिर के समक्ष मृगध्वज और भद्रक महिष की प्रतिमाएं स्थापित की गयी है । इसके साथही दर्शकों के कौतुक हेतु कामदेव और रति की प्रतिमाओ का भी निर्माण किया गया । कालान्तर मे यह जिन मंदिर कामदेव के मंदिर के नाम से प्रसिद्ध हो गया । कामदेव और रति की प्रतिमाएं देखकर दर्शकगण मृगध्वज और भद्रक महिष का वृत्तान्त जानने की जिज्ञासा प्रकट करने लगे । इससे उन्हे जैन-मत की प्राप्ति का लाभ मिलने लगा । बृहत्कथाकोश मे कामदेव श्रेष्ठी की जगह ऋषभसेन श्रेष्ठी का नामोल्लेख है । और भी कुछ भिन्नताएं देखने मे आती है ।

(३) कडारपिंग की कथा

जैन कथाकारो मे यह कथा लोकप्रिय रही है । भगवती आराधना (९२९), वसुदेवहिंडि (२९६, ३-२५), बृहत्कथाकोश (८२) और सोमदेव सूरि कृत यशस्तिलकचंपू (उपासकाध्ययन, ३१, पृ. १९८-२०३) मे यह कथा मिलती है । भगवती आराधना की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है जबकि शेष रचनाओं के कथानकों मे

राजा, मंत्री, पुरोहित, श्रेष्ठी आदि के नामों मे भिन्नता पाई जाती है । सोमदेव सूरि का आख्यान काव्य-कला की दृष्टि से सर्वोत्तम है ।

(४) कोक्कास (कोकाश) बढ़ई की कथा

यह कथा भी प्राचीन जैन कथा-साहित्य मे लोकप्रिय रही है । श्वेतांबरीय आगम साहित्य मे यह आवश्यक निर्युक्ति (९२४), आवश्यक चूर्णी (पृ. ५४०-४१), दशवैकालिकचूर्णी (१०३), विशेषावश्यक भाष्य (३६०८), वसुदेवहिंडि (६१, २४-६४, १), और हरिभद्रीय आवश्यक टीका (४०९ अ - ४१०), तथा दिगंबरीय बृहत्कथाकोश (५५, १७३ आदि) मे मिलती है । बुधस्वामी कृत बृहत्कथाश्लोकसंग्रह (५, २००-२७९) मे भी पाई जाती है । कोक्कास एक चतुर बढई (वर्धकी) था । यवन देश मे जाकर उसने इस विद्या की शिक्षा प्राप्त की थी । वह आकाश मार्गगामी गरुड़यंत्र (कुक्कुटयत्र) के निर्माण मे निपुण था । हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश के अनुसार, कोकाश नरमोहनकारी सौंदर्यवती स्त्रियों की आकृति वाले सैकडों यंत्र बनाने मे कुशल था जिन्हें देखकर बडे-बड़े चित्रकार आश्चर्यचकित रह जाते । बृहत्कथाश्लोकसंग्रह के अनुसार, केवल यवन देश के शिल्पकार ही आकाशयंत्र बनाना जानते थे तथा राजा उदयन का बढ़ई जलयंत्र, अश्मयंत्र, पांशुयंत्र आदि विविध यंत्रो के निर्माण मे समर्थ था ।[1] यहां उल्लेख है कि अपनी रानी की आकाशयंत्र द्वारा आकाश में सैर करनेकी तीव्र इच्छा जान उदयन ने अपने शिल्पकार को गरुड़यंत्र बनाने का आदेश दिया । अरेबियन नाइट्स मे भी यह कथा मिलती है जो भारतीय कथा से प्रभावित है । जैसे कहा चुका है, यह कथा भी गुणाढ्य की बृहत्कथा मे रही होगी जिसने बृहत्कथा पर आधारित वसुदेवहिंडि और बृहत्कथाश्लोकसंग्रह को प्रभावित किया ।[2]

---

१ बृहत्कल्प भाष्य (४, १९१५) में यंत्रमय प्रतिमाओं के निर्माण का उल्लेख है जो चलती-फिरती और पलक मारती थी । इस प्रकार की प्रतिमाएं यवन देश में तैयार की जाती थी ।

२. देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, द वासुदेवहिंडि - ऐन ऑथेंटिक जैन वर्जन ऑफ द बृहत्कथा, पृ १२३-२९.

(५) राजा की महादेवी सुकुमालिका

श्वेतांबरीय जयसिंहसूरि (९वीं शताब्दी ई.) कृत धर्मोपदेशमालाविवरण (पृ. १९८ आदि) में महादेवी का नाम सुकुमालिया[1] और हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश (८५) में रत्ता है । बृहत्कथाकोश की कथा देवरति नृप-कथानक के शीर्षक के नीचे दी हुई है । दोनों की कथावस्तु में समानता है, दोनो का स्रोत एक है । दोनों ही संप्रदाय के कथाकारों ने इस लोकप्रिय कथा को उपयोगी समझ अपनी-अपनी रचनाओ मे स्थान दिया है । श्वेतांबरीय भत्तपरिण्णा में भी यह कथा संक्षेप मे उल्लिखित है । कहानी मे प्रयुक्त कथानक रूढ़ि (मोटिफ) अन्यत्र भी देखने मे आती है ।[2]

(६) श्रेणिक कथानक

जैन कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से बृहत्कथाकोश के अन्तर्गत श्रेणिक कथानक (५५) महत्त्वपूर्ण है । राजगृह के राजा उपश्रेणिक ने राजपुत्रों की परीक्षा लेने के लिए थालियों मे खीर परोसकर राजपुत्रो को खाने का आदेश दिया । इस बीच खीर की थालियो पर कुत्ते छोड़ दिये गये । पहला राजपुत्र कुत्तों के भय से खीर की थाली छोड़कर चला गया । दूसरा राजपुत्र डण्डे से कुत्तों को भगाता हुआ स्वयं खीर खाता रहा । तीसरा राजपुत्र स्वयं भी खाता रहा और कुत्तो को भी खिलाता रहा । तीसरे राजकुमार से प्रसन्न होकर राजा ने उसे युवराज पद दे दिया । परंपरागत यह लौकिक कथा श्वेतांबरीय व्यवहारभाष्य (४.२०९ आदि, ४.२६७) में भी पाई जाती है ।

---

१. हिन्दी अनुवाद के लिए देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, नारी के विविध रूप, 'सुकुमालिका का पतिव्रत' कहानी, पृ. १४३-४५.

२. देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत नरेटिव लिटरेचर, पृ ५०-५१

(७) बुद्धिमती की कथा

हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश (१४) में विचित्र नामक चित्रकार की कन्या बुद्धिमती का आख्यान उल्लिखित है । विचित्र किसी चित्रशाला मे चित्रकारी करने जाया करता था । बुद्धिमती अपने पिता के लिए रोज भोजन लेकर आती । चित्रकार ने मणिकुट्टिम भूमि मे मयूरपिच्छ का एक ऐसा सुंदर चित्र बनाया जो सचमुच का मयूरपिच्छ जान पड़ता था । इस बीच राजा वहा उपस्थित हुआ और वह सचमुच का मयूरपिच्छ समझकर उसे हाथ से उठाने की कोशिश करने लगा । यह देखकर बुद्धिमती के मुह से अचानक निकल पड़ा, "अरे, कितना मूर्ख है !" आगे चलकर बुद्धिमती ने और भी अनेक प्रकार से राजा की परीक्षा की । राजा ने बुद्धिमती की चतुराई और उसके सौंदर्य से आकृष्ट होकर उससे विवाह कर लिया । यही कथा आवश्यक चूर्णी (२, पृ. ५७-६०) मे आती है । यहां चित्रकार की कन्या का नाम कनकमंजरी है । कनकमजरी पहेलियां बुझानें मे बहुत कुशल थी । वह एक-से-एक सुन्दर कहानियां सुनाकर राजा को छह महीने तक अपने पास रोके रही ।[1]

(८) विद्युल्लता आदि कथानक

बृहत्कथाकोश मे इस कथानक (७०) के अन्तर्गत दो जाति-अश्वो की कहानी आती है । वणिक् पुत्र समुद्रदत गोधन के स्वामी अशोक सेट के यहां रहता हुआ उसके घोडो की संभाल करने लगा । सेठ की कन्या कमलश्री से उसका प्रेम हो गया । सेट की नौकरी छोड़कर जाते समय उसने अपने वेतन के रूप मे दो प्रधान अश्वों की मांग की जिसकी जानकारी उसे सेट की कन्या द्वारा हो गई थी । तत्पश्चात् मालिक ने कमलश्री का उसके साथ विवाह कर दिया और साथ में दो प्रधान अश्व भी दे दिये ।

बृहत्कल्पभाष्य (३, ३९५९ आदि) में यह आख्यान आता है । कहानी के पात्रों के नाम यहां नही दिये गये है । घोडो का मालिक घोड़ो की संभाल करने वाले अपने नौकर मे अपनी कन्या का विवाह करके उसे घर-जमाई बना लेता है ।

---

१. हिन्दी रूपांतर के लिए देखिए, दो हजार बरस पुरानी कहानियां, पृ ९५-१००.

(तीन)
कथाएं अपने विविध रूपों में

धर्म, अर्थ और काम के अतिरिक्त कथाओं के और भी प्रकार बताये गये हैं। शिवार्य की भगवती आराधना (६५०) में भक्त, स्त्री, राज और जनपद के साथ कन्दर्प (रागोद्रेक हास्य मिश्रित अशिष्ट वचनयुक्त) तथा नट और नर्तिकाओं की कथाओं का उल्लेख है। इन कथाओं को विकथा कहा गया है। कथाओं के अनेक भेद किये जा सके है। कुछ कथाएं मनोरंजन के लिए होती हैं, कुछ कुतूहल का भाव पैदा करती हैं, कुछ चमत्कारपूर्ण होती हैं, कुछ कल्पित होती हैं, कुछ बालकों के लिए होती हैं, कुछ प्रौढ़जनों के लिए होती हैं, कुछ कथाओं में पहेलियां बूझी जाती हैं, कुछ प्रश्नोत्तर-प्रधान होती हैं, कुछ कथाएं धूर्तों एवं पाखंडियों, मुग्धजनों एवं विटों तथा वेश्याओं और कुट्टिनियों संबंधी होती हैं। पशु-पक्षियों की कथाएं भी जैन कथा-साहित्य में कम मात्रा में नहीं हैं।

धूर्तों के आख्यान

हरिभद्रसूरि ने अपने धुत्तक्खाण[1] (धूर्ताख्यान) में मूलदेव, कण्डरीक, एलाषाढ़, शश[2] और खण्डपाणा नामक पांच सुप्रसिद्ध धूर्तों का सरस वर्णन किया है। पांचों एकत्र बैठकर अपने-अपने अनुभव सुनाते हैं, और शर्त यह है कि जो इन अनुभवों को सच न माने, वह सबके भोजन की व्यवस्था करे, और जो रामायण, महाभारत और पुराणों के आधार से अपने कथन को सिद्ध कर सके, उसे धूर्तों का शिरोमणि घोषित किया जाये। धुत्तक्खाण हास्य, व्यंग्य और विनोद का अपने ढंग का एकमात्र जैन कथा-ग्रंथ है जिसमें लेखक ने ब्राह्मण परम्परा द्वारा मान्य रामायण,

---

१. निशीथचूर्णी की पीठिका (गाथा २९४-९६) में धुत्तक्खाण का उल्लेख पाया जाता है, इससे जान पड़ता है कि हरिभद्र के पूर्ववर्ती इस नाम का कोई ग्रंथ रहा होगा।

२. चतुर्भाणी में शश का उल्लेख मूलदेव के मित्र के रूप में किया गया है, मोतीचन्द और वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा संपादित एवं अनूदित, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, १९६०.

महाभारत और पुराणो की अतिरंजित कथाओं पर विनोदपूर्ण शैली मे व्यंग किया है ।

दसवीं शताब्दी के जैन विद्वान् सोमदेव सूरि ने अपने यशस्तिलकचम्पू मे मुग्धजनों के धूर्तो द्वारा ठगे जाने के संबंध में लिखा है :

"जो मुग्ध पुरुष धूर्तो, मायावियों, दुर्जनो, स्वार्थनिष्ठ और विमानितो के प्रति साधु-बुद्धि से आचरण करता है, वह लोक में उनके द्वारा ठगाया जाता है ।"[१] मध्यकालीन सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेमेन्द्र (११ वीं शताब्दी) कृत कला-विलास मे धूर्तो से सावधान रहने की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा है : "धनवान कुलोत्पन्न मुग्धजन धूर्तो के हाथ मे ऐसे खेलते है जैसे गेंद । वे वारवनिताओ के चरणो के नूपुरो मे लगी हुई मणि की भांति जीवन यापन करते है । वे पक्षि - शावकों की भांति देश और काल के ज्ञान से वंचित रहते हैं, पगु होते हुए फुदक कर चलते है; जैसे मार्जार इन शावको को हजम कर जाते है, वैसे ही धूर्तजन मुग्ध पुरुषो को हजम कर जाते है ।"[२]

धूर्तो को चतुर्मुख कहा गया है : वे मिथ्या आडम्बर के धनी पुस्तकीय पंडित कथा-कहानियो मे प्रवीण होते है, वर्णन मे शूर और बडे चपल होते है ।[३] वे इतने चतुर होते है कि यदि किसी स्त्री का पति परदेश गया हुआ हो तो वे दृष्ट, अदृष्ट, अथवा क्रूर और कृत्रिम वचनमुद्रा के द्वारा उस मुग्ध वधू का अपहरण कर लेते है ।[४]

मूलदेव को अत्यन्त मायावी, समस्त कलाओं मे निष्णात, धूर्त-शिरोमणि के रूप मे चित्रित किया गया है । जैसे वेश्याओ और वार-वनिताओ के कूट-कपट से बचने के लिए संभ्रान्त जन अपने पुत्रो को कुट्टिनियों और दूतियों के पास वेश्याचरित की शिक्षा ग्रहण करने भेजते थे,[१] उसी प्रकार धूर्तो और मायावियों के चंगुल से बचने

---

१ - धूर्तेषु मायाविषु दुर्जनेषु स्वार्थैकनिष्ठेषु विमानितेषु ।
वर्तेत यः साधुतया स लोके प्रतार्यते मुग्धमतिर्न केन ॥ - भाग २, पृ. १४५

२ - १.१८-१९

३ - वही, ९.७०

४ - वही, ९.७१

के लिए उन्हें धूर्तविद्या सिखाई जाती थी । मूलदेव को स्तेयशास्त्र[2] का प्रवर्तक कहा गया है । वह अपनी शिष्यमंडली से घिरा रहता तथा शिष्यों को दंभ और धूर्तविद्या की शिक्षा प्रदान करता । भोजदेव की शृंगारमंजरी में मूलदेव को धूर्त, अति विदग्ध, सर्व पाखंडों का ज्ञाता, सकल कलाकुशल, वंचक और प्रतारक कहा गया है ।[3] क्षेमेन्द्र कृत कलाविलास में हिरण्यगर्भ नाम का व्यापारी मूलदेव का नाम सुनकर अपने पुत्र चन्द्रगुप्त को धूर्तविद्या का प्रशिक्षण देने के लिए उसके पास पहुंचता है । धूर्तविद्या के लिए दंभ की शिक्षा परम आवश्यक मानी गयी है । दंभ के संबंध में कहा गया है कि जैसे जल में मछली की गति नहीं जानी जाती, वैसे ही दंभ की गति भी नहीं जानी जाती । जैसे मंत्र के बल से सर्प, कूटयंत्र के बल से हरिण और जाल द्वारा पक्षी पकड़े जाते है, वैसे ही दंभ मनुष्यों को पकड़ने का जाल है । माया को दंभ का आधार बताया गया है । दंभ तीन प्रकार के है : बकदंभ, कूर्मदंभ और मार्जारदंभ । व्रत-नियम धारण करके बगुले के समान आचरण करने को बकदंभ, व्रत-नियमों को संवृत करके कछुए के समान आचरण करने को कूर्मदंभ तथा अपनी गति और नयनों को छिपाकर मार्जार के समान नियमों को गुप्त रखने को घोर मार्जारदंभ कहा गया है (कलाविलास, १, १८) । पहले दंभ को पति, दूसरे को राजा और तीसरे को चक्रवर्ती की संज्ञा दी गयी है ।

---

१ - हेमविजयगणि ने कथारत्नाकर (मौर्यद्रोहित जितशत्रु नृप कथा ९) में चातुर्य के मूल कारणों के संबंध में कहा है :

देशाटनं पंडितमित्रता च, पण्यांगना राजसभाप्रवेशः ।
अनेकशास्त्रार्थविलोकनं च, चातुर्यमूलानि भवंति पंच ॥

- देशाटन, पंडितजनों की मित्रता, वेश्या, और राजसभा में प्रवेश, अनेक शास्त्रों के अर्थ का विचार - ये पांच चातुर्य के मूल हैं ।

२ - महाकवि दण्डी ने अपने दशकुमारचरित में द्यूत और कपट कला की भांति राजकुमारों के लिए चौर्यविद्या में निष्णात होना भी आवश्यक बताया है ।

३ - मूलदेव संबंधी कहानियों के लिए देखिए, क्षेमेन्द्र, बृहत्कथामंजरी, विषमशील प्रकरण, हरिभद्र कृत उपदेशपद, वादिदेव सूरि कृत टीका, गाथा ९२, पृ ६४, आवश्यक चूर्णी, ५४९; कथासरित्सागर, वेतालपंचविंशतिका, कथा १३, कथा २२, उत्तराध्ययन, नेमिचन्द्र कृत टीका, आदि, जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ ५८-५९, ५९ नोट ।

दंभ को एक महामुनि के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो एक हाथ में कुश, पुस्तक और माला लिये है; दूसरे में दण्ड है जिसकी सींगनिर्मित मूठ उसके हृदय की भांति वक्र है । हाथ में माला लिये वह प्रार्थना के मंत्र उच्चारण कर रहा है । वह इतना बड़ा ऋषि है कि सातों ऋषि उसके प्रति विनम्रशील हैं । सृष्टि के कर्ता स्वयं ब्रह्मा उसके असाधारण तप से प्रभावित है । ब्रह्मा के सामने ही दंभ उसे धीरे और मुंह पर हाथ रखकर बोलने को कहता है जिससे कि उसकी श्वास से वह दूषित न हो जाये । दंभ पृथ्वी पर भी अवतरित होता है और हजारों रूपों में प्राणियों को प्रभावित करता है । उसका निवास-स्थान चन्द्रमा में है, उच्च पदाधिकारियों के मुह पर वह तमाचा मारता है तथा साधु-संन्यासियों, ज्योतिषियों, वैद्यों, नौकर-चाकरों, व्यापारियों, सुवर्णकारों, नटों, सिपाहियों, गायकों, चारणों, जादूगरों और बगुले जैसे पक्षियों के हृदय में उसने प्रवेश पा लिया है (१.६५ आदि) । कहते हैं कि ब्रह्मा ने दंभ के कंठ में शिला बांध उसे मर्त्यलोक में पटक दिया और वह वन और नगरों में घूमता - फिरता गौड़ देश जा पहुंचा ।

वेश्याओं और कुट्टिनियों के आख्यान

श्वेताम्बरीय नन्दिसूत्र में महाभारत, रामायण, कौटिल्य, वैशेषिक, बुद्धवचन और लोकायत आदि के साथ वैशिकशास्त्र का भी उल्लेख किया गया है । वेश्याएं वैशिकशास्त्र में निष्णात होती थीं और इस शास्त्र के अध्ययन के लिए लोग दूर-दूर से उनके समीप पहुंचते थे । दत्तक[1] या दत्तवैशिक को वैशिकशास्त्र का कर्ता कहा जाता है जिसने पाटलिपुत्र की वेश्याओं के हितार्थ इसकी रचना की (सूत्रकृतांग टीका, ४.१.२४) । सूत्रकृतांग चूर्णी (पृ. १४०) में वैशिकतंत्र से उद्धरण देते हुए कहा है : "दुर्विज्ञेयो हि भावः प्रमदानाम्" (प्रमदाओं के मन का भाव जानना कठिन है) । भरत के नाट्यशास्त्र (२३) में वैशिक का उल्लेख पाया जाता है । वैशिक का अर्थ है समस्त कलाओं में विशेषता पैदा करना, अथवा वेश्योपचार का ज्ञान होना ।

१ - कुट्टिनीमत (५०४) में दत्तक को वैशिक का कर्ता बतलाया गया है ।

वैशिकवृत्त के ज्ञाता के संबंध में कहा है कि वह समस्त कलाओं का ज्ञाता, समस्त शिल्पों मे कुशल, स्त्रियों के हृदय को आकृष्ट करने वाला, शास्त्रज्ञ, रूपवान, वीर, धैर्यवान, सुंदर वस्त्रधारी, मिष्टभाषी और कामोपचार मे कुशल होता है । वात्स्यायन कृत में कामसूत्र के वैशिक अध्याय में वैशिक संबंध में चर्चा की गयी है । भोजदेव की शृंगारमंजरी में वैशिक उपनिषद् का रहस्य उद्घाटित करते हुए कहा है कि वेश्याओं को कदापि किसी के प्रति सच्चे प्रेम का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए । "जैसे व्याघ्र से सावधान रहकर रक्षा करना आवश्यक है, वैसे ही वेश्या को अपने प्रेम-प्रदर्शनमे सावधानी रखते हुए सदा अपनी रक्षा करनी चाहिए । इस संसार मे प्रेम के कारण कितने ही भुजंग (विट) वेश्याओं द्वारा ठगे जा चुके है ।"[1] वेश्याओ का एकमात्र उद्देश्य धनार्जन है जिसके लिए उन्हें अनेक कपट-जाल रचाने पड़ते है । कर्मयोगी की भांति उन्हें जीवन व्यतीत करना पड़ता है और इसके लिए वृद्ध-युवा, ऊच-नीच तथा रोगी-निरोगी के प्रति समान भाव रखते हुए उनका मनोरंजन करना पड़ता है । वेश्याओ की नीति राजनीति की भांति बहुरंगी बतायी गयी है । कभी सच बोलकर, कभी मिथ्या भाषण कर, कभी कोमल बन, कभी कठोर बन, कभी लोभी बन और कभी उदार बनकर वे आचरण करती है । वैशिकतंत्र में कहा गया है कि यदि जीवित-कपट से धन की प्राप्ति न हो सके तो मरण-कपट का आश्रय लेना चाहिए । इस संबंध मे ११ वी शताब्दी के जैन विद्वान् सोमप्रभसूरि कृत कुमारवाल-पडिबोह में 'कामलता का मरण-कपट' नाम की एक मनोरंजक कथा आती है । भद्दिलपुर के सुन्दर श्रेष्ठी ने अपने पुत्र अशोक को वेश्याचरित की शिक्षा देने के लिए चंडा नामक कुट्टिनी के सुपुर्द किया । कुट्टिनी उसे वेश्यावृत्ति करने वाली अपनी चार कन्याओ के महलों में ले गई और वहां रहते हुए उसे गुप्त रूप से उनके चरित का अध्ययन करने का आदेश दिया । श्रेष्ठीपुत्र अशोक ने १२ वर्ष चंडा के घर रह कर वेश्याचरित का अध्ययन किया । तत्पश्चात् चंडा ने उसे उसके पिता को सौंप दिया । कुछ समय बाद

---

१. यद् व्याघ्रादिव प्रेम्नः सावधानतया सर्वदा एव आत्मा रक्षणीयः । तत्र रागपरतन्त्राः कति कति भुजंगा वेश्याभिर्विप्रलब्धाः ॥

अशोक ने धनार्जन के लिए विदेश यात्रा के लिए प्रस्थान किया । गजपुर में कामलता नाम की एक परम रूपवती वेश्या रहती थी । कामलता को जव पता चला कि आगन्तुक व्यापारी वहुत धनी है तो उसने उसे अपने जाल में फंसाने की चेष्टा की । और जब जीवित-कपट द्वारा उसे सफलता न मिली तो उसने मरण-कपट का आश्रय ले अशोक को अपनी समस्त धन-सम्पत्ति उसके हवाले करने के लिए वाध्य किया ।[१]

क्षेमेन्द्र ने कलाविलास के वेश्यावृत्त नामक प्रकरण में नृत्य, गीत, वक्र-वीक्षण, काम-परिज्ञान, मित्रवंचन, सुरतकला, रुदित, स्वेद-भ्रम-कंप, निजजननी कलह, निष्कारण दोषभाषण, केशरंजन, कुट्टिनीकला आदि वेश्याओं की ६४ कलाओं का प्रतिपादन किया है । समयमातृका (अर्थात् कुट्टिनी अथवा शिक्षा देने वाली माता; ईसवी सन् १०५० मे समाप्त) सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से क्षेमेन्द्र की दूसरी महत्वपूर्ण रचना है । इसके दूसरे प्रकरण मे वेश्याओ और कुट्टिनियों की चर्चा की गयी है । वेश्याओ को आरंभ से ही उनके व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाता था । यह प्रशिक्षण सात वर्ष की अवस्था से आरंभ होता । पांच वर्ष की होने पर पिता के लिए उनका दर्शन निषिद्ध था । शिव और कृष्ण को वे परम देवता मानती । सात वर्ष की अवस्था मे उन्हे एक ही समय में चोर और वेश्या वनना पड़ता, एक के वाद एक अनेक पुरुषो से विवाह करना पड़ता, धनी विधवा वनकर रहना पड़ता तथा कभी चोर, कभी साध्वी, कभी कुट्टिनी, कभी ठगिनी, कभी मधुशाला की धनी पालिका, कभी खाद्य-विक्रेता, कभी भिक्षुणी, कभी मालिन, कभी जादूगरनी, कभी मकान-मालकिन, कभी पवित्र व्राह्मणी और आखिर मे फिर कुट्टिनी का पेशा स्वीकार करना पड़ता । प्रशिक्षण के लिए उसे किसी वेश्या के सुपुर्द कर दिया जाता । उसकी वृद्धावस्था का चित्रण देखिए : "उल्लू-जैसा उसका मुख, कौवे-जैसी गर्दन, मार्जार जैसी आंखें; लगता है परस्पर विरोधी प्राणियो के अंगो को जोड़-तोड़कर उसकी सृष्टि

---

१ - देखिए सोमप्रभ सूरि, कुमारपालपडिवोह, हिन्दी रूपांतर के लिए जगदीशचन्द्र जैन, नारी के विविध रूप, कहानी ९ (चौखंभा ओरियन्टालिया, वाराणसी, १९७८); शुकसप्तति, कहानी २३ के साथ तुलनीय, तथा जगदीशचन्द्र जैन, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ २७४-७५ तथा फुटनोट ।

की गयी है ।"[1] आठवीं शताब्दी के कश्मीरी विद्वान् दामोदर गुप्त ने विट, वेश्या, धूर्त एवं कुट्टिनियों के कपट-जाल से बचने के लिए कुट्टिनीमत की रचना की ।

मुग्धजनों के आख्यान

जैसे धूर्तों की धूर्तता से सावधान रहना आवश्यक है, उसी प्रकार मूर्खों[2] और विटों[3] - लंपटों से सुरक्षित रहना भी आवश्यक बताया गया है । भरट द्वात्रिंशिका (शैव साधुओं की बत्तीस कहानियां) में कहा है : "इस संसार में निःश्रेयस की प्राप्ति के इच्छुक लोगों को सदाचरण के ज्ञान में वृद्धि करते रहना चाहिए । और यह सदाचरण का ज्ञान मूर्खजनों के चरित्र पढ़कर ही हो सकता है जो अपनी बुद्धि द्वारा कल्पित घटना-प्रसंग के अनर्थ दर्शन द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है । अतएव इस प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए, मूर्खजनों के आचरण के परिहार हेतु यह उपक्रम आरंभ किया जा रहा है" (पहली कहानी की भूमिका) ।

इस प्रकार की कौतूहलपूर्ण कथा-कहानियां जैन एवं अजैन कथा-ग्रंथों में पाई जाती हैं । हरिषेण के बृहत्कथाकोश में वैद्य-कथानक (१०२-३) कहानी पढ़िये :

---

१ - उलूक-वदना काक-ग्रीवा मार्जार-लोचना ।
निर्मिता प्राणिनामंगैरिव नित्यविरोधिनाम् ॥(४७)

२ - मूर्ख में निम्नलिखित आठ गुण कहे गये हैं :
मूर्खत्वं हि सखे ममापि रुचितं, तस्मिन् यदष्टौ गुणाः ।
निश्चिन्तो बहुभोजनोऽत्रपमना, नक्तंदिवा शायकः ।
कार्याकार्यविचारणेऽन्धबधिरो, मानापमाने समः ।
प्रायेणामयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुखं जीवति ॥(उप[illegible] ७५)
निश्चिन्त, बहुभोजी, निर्लज्ज, रात-दिन सोने वाला, कार्य-अकार्य के विचार में अंधा-बहिरा, मान-अपमान में सम, प्रायः निरोग और पुष्ट शरीर आराम से जीवन बिताता है ।

३ - चतुर्भाणी के अन्तर्गत ईश्वरदत्त कृत धूर्तविट-संवाद से ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र के राजमार्गों पर विटों की भीड़ लगी रहती थी । भरत मुनि ने विट को वेशोपचार में कुशल, मधुरभाषी, सभ्य, कवित्व करने वाला, ऊहापोह में सक्षम, वाग्मी एवं चतुर कहा है । क्षेमेन्द्र ने अपने देशोपदेश में उसे शील-गुणविहीन, मद्यप बकवादी और कुम्हार के चक्र की भांति कुटिल कह कर नमस्कार किया है ।

(१) किसी वैद्य के दो पुत्र थे - धनचन्द्र और धनमित्र । धनचन्द्र कनिष्ठ था, धनमित्र ज्येष्ठ । मार्ग में जाते हुए उन्हे एक मरा हुआ चीता दिखाई दिया । कनिष्ठ ने अपने ज्येष्ठ भ्राता से कहा, "मै इस व्याघ्र को ऐसी औषधि दूंगा जिससे यह जी उठे ।" ज्येष्ठ भ्राता ने उत्तर दिया, "ऐसा करना ठीक नहीं । व्याघ्र, सर्प आदि घातक प्राणियो के प्रति किया हुआ उपकार शांतिप्रद नही होता । जीवित हो जाने पर यदि वह हम लोगो पर ही हाथ साफ कर दे तो हम क्या करेंगे ?" लेकिन कनिष्ठ भ्राता ने कहा, "ऐसी बात नही, बहुत से जानवर भी शान्त-वृत्ति वाले होते है । इसमे भय की कोई बात नहीं ।" कनिष्ठ की यह बात सुनकर ज्येष्ठ भ्राता पेड़ पर चढ़कर बैठ गया । धनचन्द्र द्वारा चीते की आखो पर रस का लेप करते ही वह जी उठा और धनचन्द्र को मारकर खा गया ।[1]

मलधारि राजशेखर (१४ वी शताब्दी का मध्य) के विनोदकथा सग्रह में अन्य मनोरंजक कहानिया पढ़िये :

(१) कोई कामधेनु गाय आकाश से पृथ्वी पर उतर कर प्रतिदिन कोमल-कोमल घास चरती और अपने स्थान को लौट जाती । वहा सर्वपशु नामक एक तापस रहता था । एक दिन गाय की पूछ पकडकर वह स्वर्ग मे पहुच गया । वहां मन-भर स्वादिष्ट लड्डू खाकर वह अपने मठ मे लौट आया । जब उसके साथियो को पता लगा तो उन्होंने भी स्वर्ग के लड्डू खाने की इच्छा व्यक्त की । कामधेनु गाय ने कहा, तुम लोग मजबूती से एक-दूसरे के पैर पकडे रहना । स्वर्ग का लड्डू खाने के इच्छुक सब लोग एक-दूसरे के पैर पकड़कर स्वर्ग की सैर करने चल दिये । बीच मे एक शिष्य ने प्रश्न किया, "महाराज, यह बताइए जिस लड्डू के लिए आप हमे स्वर्ग लिये जा रहे है, वह कितना बड़ा है ?" तापस अपने हाथ फैलाकर बताना ही चाहता था कि इतना, कि सबके सब धड़ाम से नीचे आ गिरे (मोदकी कथा) ।[2]

---

१ - भगवती आराधना (११२५), शुभशीलगणि कृत प्रबन्धपंचशती (४१६, पृ २२३) में भी, तुलना कीजिए हेमविजयगणि कृत कथारत्नाकर की 'प्रतिविपर्य कमलाधर [illegible]' (३, पृष्ठ १७८) के साथ ।

२ - भरटद्वात्रिंशिका में भी यह कहानी विश्व साहित्य की कहानियों में पाई जाती है ।

(२) किसी चोर ने एक सेठ के घर सेंध लगाई । सेंध लगाते हुए उस पर घर की दीवाल गिर पड़ी । प्रात.काल होने पर चोर की मां ने राजदरबार मे पहुंचकर सेठ की रपट लिखवाई । सेठ को राजदरबार में उपस्थित किया गया । सेठ ने कहा, "हुजूर, इसमें मेरा दोष नही । राजगीर ने दीवाल चिनते समय उसे ठीक से नही चिना । राजगीर को बुलाया गया । उसने कहा, "मालिक, जब मैं दीवाल चिन रहा था तो मैं पास से गुजरती हुई एक स्त्री को देखने लगा ।" स्त्री को हाजिर किया गया । स्त्री ने जवाब दिया, "इसमें मेरा दोष नही । कोई साधु उधर से जा रहा था, उससे बचने के लिए मैंने यह रास्ता पकड़ा ।"साधु को बुलाया गया । राजा के प्रश्न करने पर उसने कोई उत्तर नही दिया । राजा का हुकुम हुआ कि उसे सूली पर चढ़ा दिया जाये । लेकिन सूली छोटी निकली । इस पर राजा ने हुकुम दिया - जो कोई सूली मे आ सके, उसे सूली दे दी जाये ! (अविचार कथा)[१]

भरटद्वात्रिंशिका मुग्धकथा का सुंदर उदाहरण है । यहां मूर्ख, लंपट, वंचक और धूर्त पुरुषों का सरस चित्रण किया गया है । जे. हर्टल के अनुसार, बहुत करके यह रचना किसी जैन विद्वान की है । इस संग्रह की कतिपय कथाएं विनोदकथा संग्रह मे भी पाई जाती है । देखिए -

(१) किसी जटाधारी शैव-उपासक ने अपने शिष्य को बाजार से घी और तेल खरीदने के लिए भेजा । अपनी धूप-कड़छुली में उसने एक तरफ घी और दूसरी तरफ तेल ले लिया है । दोनो चीज लेकर वह गुरुजी के पास आया । गुरुजी ने पूछा - घी और तेल ले आये ? शिष्य ने अपने पात्र को एक बार सीधा और दूसरी बार औंधा करके दिखा दिया कि देखिए गुरुजी, यह रहा घी और यह रहा तेल । घी और तेल दोनो जमीन पर बिखर गये ! (कथा १६)[२]

(२) किसी शिष्य को भिक्षा में ३२ बाटियो का लाभ हुआ । भिक्षा लेकर वापिस लौटते हुए उसे भूख लग रही थी । यह सोचकर कि इनमें से आधी गुरुजी को देनी

१ - तुलना कीजिए, भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत 'अंधेर नगरी' (१८८१ ई.) नाटक से ।
२ - विनोदकथासंग्रह में 'अविचारित कार्य करने वाले की कथा' (६४) शीर्षक के अन्तर्गत भी ।

पड़ेंगी, वह आधी वाटियां खा गया । वाकी वचीं १६ । फिर उसके मन में वही विचार आया । वह फिर उनमे से आधी खा गया । वची आठ । उनमे से फिर आधी खा गया । अव वाकी रही चार । फिर आधी खा गया । वची दो । उसने फिर आधी खा ली । अब रह गई केवल एक । उसमे से भी आधी खा लेने पर वच गई आधी ।

आधी वाटी लेकर शिष्य गुरुजी के पास पहुचा ।

"क्या भिक्षा मे वस यही मिला ?" गुरुजी नें पूछा ।

शिष्य - नहीं, गुरुजी, मुझे भूख लगी थी, वाकी मैंने खा ली है ।

"कैसे ?" गुरुजी ने पूछा ।

शिष्य ने शेप वची हुई आधी वाटी को खाकर दिखा दिया ! किसी ने ठीक ही करा है :

मूर्खशिष्यो न कर्तव्यो गुरुणा सुखमिच्छता ।
विडम्वयति सोऽत्यन्तं यथा वटकभक्षक: ॥ (कथा १६)[1]

— सुख के इच्छुक गुरु को मूर्ख शिष्य नहीं वनाना चाहिए । अन्यथा वह विडंवना को प्राप्त होता है जैसे वाटी खाने वाले शिष्य से गुरु को विडवना का भाजन वनना पडा ।

(३) कोई जटाधारी तापस वृद्ध होने के कारण ऊंचा सुनता था । उसने अपने शिष्य को वैद्य से कोई औपधि लाने को कहा जिससे उसका वहिरापन दूर हो सके । शिष्य जव वैद्य के घर पहुंचा तो वह तभी याहर से लौटा था । वाहर जाते हुए वह अपने लड़के से कह गया था कि वह अपने छोटे भाई को अच्छी तरह पढ़ाये । वाहर से लौटकर आने पर वैद्यजी ने अपने लड़के से पूछा तो उसने जवाव दिया, "पिताजी, मैंने अपने भाई से पढ़ने के लिए वहुत कहा, लेकिन वह सुनता ही नही !

वैद्यजी को वहुत गुस्सा आया और उन्होंने अपने छोटे लड़के को वुलाकर उसकी खूव मरम्मत की । वे उसे पीटते जाते और कहते जाते - तू सुनता है कि नहीं ?

---

१ - विनोदकथासग्रह में 'मूर्ख शिष्य (७) शीर्षक के नीचे संकलित ।

शिष्य खड़ा हुआ यह सब देख रहा था । उसने सोचा, बहिरापन दूर करने की अचूक औषधि उसे मिल गई है । दौड़ा- दौड़ा वह गुरुजी के पास आया । अपने गुरुजी को वह पीटने लगा । बीच-बीच में वह कहता जाता—आप सुनते हैं कि नहीं ?[1]

४) किसी कुटीर में बोधिशर्मा नाम का कोई जटी साधु रहता था । उसके टेढ़े सींगवाला एक बैल था । बैल को बार-बार घर में आते-जाते देख वह सोचने लगा, "देखना चाहिए कि इसके सींगों में मेरा सिर समा सकता है या नहीं ?" प्रतिदिन यही विचार उसके मन में आता ।

एक दिन, वर्षा ऋतु समाप्त होने पर, जब वह बैल चरने जा रहा था तो जटी ने अपना सिर उसके सींगों में फंसा लिया । नतीजा यह हुआ कि मद से उन्मत्त हुआ वह बैल उछलने लगा और उसने इधर-उधर भागना-दौड़ना शुरू कर दिया । जटी को बहुत चोट आई । उसके हाथ, पैर, आंख, नाक और कान फट गये । घायल होकर वह जमीन पर गिर पड़ा ।

लोग कहने लगे, "देखो, सोच-विचार कर काम न करने वाले इस मूर्ख तपस्वी को !"

जटी ने उत्तर दिया, "तुम लोग मुझे मूर्ख कहते हो, लेकिन तुम नहीं जानते कि लगातार चार महीने सोचने के बाद मैंने यह पराक्रम किया है !"

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो ।
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दंडेन गोगर्दभौ ॥
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैरहिः ।
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधं ॥

— जल के द्वारा अग्नि को, छतरी द्वारा सूर्य के आतप को, तीक्ष्ण अंकुश द्वारा मदोन्मत्त हाथी को, दंड द्वारा गाय और गधे को, औषधियों द्वारा व्याधि को, और विविध मंत्र-तंत्र के प्रयोग द्वारा सर्प को शान्त किया जा सकता है । सब बातों की औषधि शास्त्रों में मिलती है, किन्तु मूर्ख की कोई भी औषधि नहीं ![2]

---

१. विनोद कथासंग्रह (७६) में भी ।
२. हेमविजयगणि, कथारत्नाकर, अविमृश्यकारी मूर्ख कथा ३४ ।

प्रत्युत्पन्नमति और प्रहेलिका - आख्यात

प्रत्युत्पन्नमति और बुद्धि चमत्कार की भी अनेक कथा-कहानियां जैन कथा-साहित्य मे उपलब्ध होती है । इन कहानियों को पढकर पाठक के मन में अद्‌भुत रस का संचार होता है और वह कहानी सुनते-सुनते उसमे खो जाता है । देखिए :

(१) किसी वणिक् ने शर्त लगायी कि जो कोई माघ के महीने में रात मे पानी मे बैठा रहेगा, उसे एक हजार दीनारें इनाम मे मिलेंगीं ।

एव वृद्ध बनिये ने यह चुनौती स्वीकार कर ली । उसने कडाके की सर्दी मे सारी रात पानी मे बैठकर काट दी ।

अगले दिन जब वह अपना इनाम मांगने पहुंचा तो वणिक् ने कहा : "अरे भाई ! तुम तो बहुत बहादुर हो जो इतनी भयंकर सर्दी मे बैठे रहकर भी जिन्दा निकल आये ! तुम्हे सर्दी नहीं लगी ?"

"सेठजी, पास के घर मे एक दीपक जल रहा था । उसे देखते हुए मैने सारी रात काट दी," वृद्ध ने उत्तर दिया ।

वणिक् - तो फिर तुम इनाम पाने के हकदार नही हो ! जलते हुए दीपक को देखकर तुम पानी मे बैठे रहे न !

वृद्ध बिचारा अपना-सा मुंह लेकर चला गया ।

घर पहुंचकर उसने अपनी कन्या से सब हाल कहा । कन्या ने कहा, "पिताजी, आप चिन्ता न करे, मैं देखती हूं ।"

एक दिन गर्मी के मौसम मे बूढे ने बहुत से लोगो को दावत दी । उस वणिक् को भी आमंत्रित किया गया ।

सब लोग भोजन करने बैठ गये । लेकिन भोजन के समय वणिक् को पानी नहीं दिया । जब वणिक् को प्यास लगी तो उसने पानी मांगा । वृद्ध ने कुछ दूर रखे हुए पानी के लोटे को दिखाकर कहा - यह रहा पानी, आप पी लीजिए ।

वणिक् - क्या पानी को दूर से देखकर कोई प्यास बुझा सकता है ?

"तो फिर जलते हुए दीपक को दूर से देखकर सर्दी कैसे दूर हो सकती है", वृद्ध ने उत्तर दिया ।

कन्या की तरकीब काम कर गई ।[१]

(२) कोई कुंजडा बाजार मे ककड़ियां बेचने जा रहा था । उसे एक धूर्त मिला ।

धूर्त ने कहा : कुजडे, यदि कोई तुम्हारी इन सब ककड़ियो को खा ले तो उसे क्या इनाम दोगे ?

कुंजडा : बहुत बड़ा लड्डू ।

धूर्त ने उसकी ककड़ियों को चखकर जूठा कर डाला । फिर कुंजड़े से बोला, मैंने तुम्हारी सब ककड़ियां खा ली है, अब लाओ लड्डू ।

कुजड़ा · तुमने मेरी ककड़िया खाई ही नही, लड्डू किस बात का ?

धूर्त : यदि, विश्वास न हो तो परीक्षा कराकर देख सकते हो ।

कुजड़ा ककड़ियां लेकर बाजार पहुंचा । ग्राहक ककड़ियां खरीदने आये तो कहने लगे : ये ककड़िया तो खाई हुई है, इन्हे क्यो बेच रहे हो ?

यह देखकर धूर्त ने फिर लड्डू की मांग की । कुंजडा धूर्त को लड्डू की जगह एक रुपया देने लगा लेकिन उसने नहीं लिया । जब कुंजड़े ने देखा कि उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया है तो वह सौ रुपये देने को तैयार हो गया ।

लेकिन धूर्त ने कहा - मुझे तो लड्डू ही चाहिए जिसका तुमने वादा किया है ।

कुंजड़े के एक मित्र ने उसे एक युक्ति बतायी । वह हलवाई की दुकान से एक लड्डू खरीद कर लाया । उस लड्डू को दरवाजे के बीच देहली पर रखकर वह कहने लगा - "चल मेरे लड्डू चल ।" पर लड्डू ने टस से मस होने का नाम नहीं लिया !

लोगो की भीड़ इकट्ठी हो गयी । कुंजड़े ने उनसे कहा - 'देखो भाइयो, मैंने इस धूर्त को एक बहुत बड़ा लड्डू देने का वादा किया था । आप लोग देख रहे है इस

---

१ - आवश्यक चूर्णी १, पृ ५२३-२४

लड्डू को । यह इतना बड़ा है कि दरवाजे के अंदर से होकर नहीं जा सकता । मै इस लड्डू को इस धूर्त को दे रहा हूं लेकिन यह स्वीकार नहीं करता ।

धूर्त अपना-सा मुंह लेकर चलता बना ![१]

(३) वसंतपुर मे अरिमर्दन नाम का एक राजा रहता था । दंडी उसका द्वारपाल था । अपनी तात्कालिक बुद्धि के कारण उसकी सब कोई प्रशंसा करते थे ।

एक वार की बात है, राजा ने दडी को एक भैस दी और साथ मे एक बिल्ली । राजा ने कहा, "इस बिल्ली को प्रतिदिन भैस का दूध पिलाओ ।" दंडी भैस और बिल्ली लेकर अपने घर आ गया । सात दिन तक तो वह राजा की आज्ञा का पालन करता रहा । आठवे दिन उसने अपनी पत्नी से कहा, "देख प्रिये, राजा का मस्तिष्क ठीक काम नहीं करता । वह अमृत के समान इस दूध को बिल्ली को पिला देना चाहता है !"

दंडी ने सोचा, इसका कोई उपाय करना चाहिए । एक दिन उसने बिल्ली के सामने गरम-गरम दूध रख दिया । बिल्ली ने उसे पीने की कोशिश की तो उसका मुह जल गया । उसके बाद बिल्ली को बार-बार दूध पीने के लिए बुलाने पर भी बिल्ली न आती । यह देखकर दंडी ने भैस का दूध स्वय पीना शुरू कर दिया । दूध की जगह बिल्ली को वह बचा-खुचा झूठा भोजन और छाछ पीने के लिए दे देता ।

एक दिन राजा का बुलावा मिलने पर दंडी राज-दरबार मे हाजिर हुआ । "मेरी आज्ञा का पालन करते हो ?" राजा ने पूछा ।

"महाराज, यह बिल्ली दूध को मुंह ही नहीं लगाती", दंडी ने जवाब दिया ।

दडी की बात का राजा को विश्वास न हुआ । उसने बिल्ली के पीने के लिए उसके सामने दूध का कटोरा रखवाया । लेकिन बिल्ली ने दूध को जरा भी मुंह नहीं लगाया ।

राजा ने प्रसन्न होकर दंडी को भैस और बिल्ली दोनों दे दिये ।[२]

---

१ - आवश्यक चूर्णी, १ ५४०; मिलाइए शुकसप्तति (५५): श्रीधर ब्राह्मण और चन्दन चमार की कहानी मे, विनोदकथासंग्रह, ३९ ।

२ - हेमविजयगणि, कथारत्नाकर, दण्डिनाम प्रतिहारीकथा ४, पृ १९-२१, यह कहानी मैथिल मे गोनू झा के नाम से प्रसिद्ध है, देखिये, "एकटा छला गोनू झा" नाम मे प्रसिद्ध है । देखिये 'गोनू झा बिलाड़ो' नामक २४ वी कहानी, पृ २२-२४, भवानी प्रकाशन, पटना, १९८५.

(४) किसी नगर में तस्कर-कला में निपुण सिद्धिसुत नामक एक तस्कर रहता था । एक दिन उसके पास चौर्यकला में कुशल मुशल नाम का चोर आया । मुशल को सिद्धिसुत के घर में सोने का एक सुंदर थाल दिखाई पड़ा । उसका मन उस थाल पर आ गया । सिद्धिसुत समझ गया ।

सिद्धिसुत ने अपनी खाट के ऊपर बंधे हुए छींके पर उस थाल में पानी भरकर रख दिया और निश्चिंत होकर सो गया ।

इधर मुशल रात को उठा । जब उसने देखा कि थाल में पानी भरा हुआ है तो वह बड़ी युक्ति से एक बांस की नली के जरिए ऊर्ध्व श्वास लेकर थाल का सारा पानी पी गया । फिर वह थाल को लेकर चलता बना ।

मुशल ने उस थाल को एक तालाब में छिपा दिया और आराम से सो गया ।

सिद्धिसुत की नींद खुली तो उसने देखा कि थाल छींके पर नहीं है । वह मुशल के घर पहुंचा । उसने देखा कि मुशल आराम से सोया पड़ा है । पास में उसके जूते रखे हुए थे जो पानी से गीले हो गये थे । उसके पैर भी ठण्डे थे । मुशल के गीले पदचिह्नों का अनुगमन करके वह तालाब में पहुंचा और अपना थाल निकाल लाया । अपने घर पहुंच कर वह आराम से सो गया ।

सुबह होने पर मुशल ने अपने गांव लौट जाने की इच्छा व्यक्त की । सिद्धिसुत ने नाश्ता मंगाया । मुशल की नजर उस थाल की ओर गयी जिसमें नाश्ता परोसा गया था । सिद्धिसुत ने कहा, "मित्र देख क्या रहे हैं, नाश्ता कीजिए । यह वही थाल है !"

दोनों अपने-अपने कला-कौशल का बखान करते हुए बैठे रहे । सिद्धिसुत ने कहा, "देखिए मित्र, हम तस्करों की बुद्धि ही प्रयोजन को सिद्ध करने वाली होती है जबकि चोर बुद्धिहीन होते हैं, इसीलिए उनका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ।" यह कह कर उसने एक उक्ति पढ़ी :

वाणी विहुणो वाणीउ, बुद्धिविहुणो चोर ।
चरितविहुणी कामिणी, त्रिणेइ मागस ढोर ॥

- वाणी के बिना वणिक्, बुद्धि के बिना चोर, और चरित्र के बिना कामिनी — ये तीनो ही पशु है ।[1]

हरिषेण के बृहत्कथाकोश मे श्रेणिक कथानक (५५) के अन्तर्गत एक मनोरंजक आख्यान दिया गया है जिसे **प्रहेलिका-आख्यान** कहा जा सकता है । इस प्रकार के कितने ही आख्यान जैनग्रंथो मे उपलब्ध है ।

(१) एक बार की बात है, कांचीपुर (द्रविड देश) का निवासी सोमशर्मा नाम का कोई ब्राह्मण तीर्थयात्रा के लिए चला । मार्ग मे उसकी राजपुत्र श्रेणिक से भेट हो गई । दोनो साथ-साथ चलने लगे । कुछ दूर चलने पर श्रेणिक ने अपने साथी से कहा : "देखिए, पहले मैं आपको अपने कधे पर बैठाकर ले चलता हू, फिर आप मुझे ले चलिए । इससे न आप थकेगे और न मै; दोनो का आसानी से रास्ता कट जायेगा ।[2] श्रेणिक का यह कथन सोमशर्मा को बड़ा असंबद्ध-सा लगा । मन को ही - मन वह कहने लगा - 'यह भी क्या मूर्ख है जो ऐसी उखडी-उखड़ी बाते करता है .! कही किसी भूत-प्रेत की बाधा से तो ग्रस्त नही ?

---

१ - वही, चौरद्वयकथा ६१, पृ १८६

२ - मा स्कन्धेन वह त्व भो त्वा वा पथि वहाम्यहम् ।
अनेन च विधानेन मार्गो गम्यो भवेद् द्विज ॥ ५५ ४३
तुलना कीजिए सघदासगणि वाचक कृत वसुदेवहिंडि (लगभग ई सन् की तीसरी शताब्दी) के निम्न वक्तव्य के साथ पैदल यात्रा करते हुए जब वसुदेव और अशुमत चलते-चलते थक गये तो अशुमंत ने वसुदेव से कहा - अज्जउत्त ! कि वहामि मे ? याउ वहह वा मम ?" (आर्यपुत्र ! क्या मैं आपको ले चलू, या आप मुझे लेकर चलेंगे ?) यह सुनकर वसुदेव ने उत्तर दिया - "आरुहह कुमार ! वहामि ति ।" (कुमार, आओ, कधे पर चढ जाओ, मैं तुम्हे लेकर चलूगा !) कुमार ने हसकर कहा - "अज्जउत्त ! न एव मग्गे वुज्झइ, जो परिसतस्स मग्गे अणुकूल कह कहेति, तेण सो किर वूढो होई ।" (आर्यपुत्र ! इस प्रकार किसी को मार्ग में नही ले जाया जाता, थकान हो जाने पर अनुकूल कथा-कहानी कहने और सुनने से मार्ग आसानी से तय किया जा सकता है; पृ २०८, पंक्ति २४-२८, संथाल कहानियों में यह पहेली मिलती है । कोटा अपने साथी से कहता है कि हम दोनों बारी-बारी से एक-दूसरे को कंधे पर बैठाकर ले चलें जिससे कि थकान न हो और रास्ता आराम से कट जाये, फोकलोर ऑफ संताल परगनाज़, पृ २६९ आदि, जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत नरेटिव लिटरेचर, पृ ५७ आदि ।

कुछ दूर चलने पर खड़े हुए खेत दिखाई दिये । उन्हें देखकर श्रेणिक कहने लगा : "महाराज, यह खेत खाया हुआ है अथवा खाया जायेगा ?"[1] फिर सोमशर्मा की कुछ समझ में न आया । उसने हंसकर बात टाल दी ।

कुछ आगे चलने पर दोनों आराम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गये । श्रेणिक जब गर्मी में यात्रा कर रहा था तो वह अपने छाते को कंधे पर रखकर चलता था, लेकिन अब पेड़ की छाया में उसने अपना छाता खोलकर अपने सिर पर लगा लिया । सोमशर्मा फिर हतबुद्धि होकर रह गया ।[2]

आगे चलने पर एक नदी पड़ी । जब नदी पार करने की बात आई तो श्रेणिक ने अपने जूते पहन लिये । और नदी पार कर लेने के बाद फिर हाथ में ले लिये ।[3] अब तो सोमशर्मा को निश्चय हो गया कि अवश्य ही यह आदमी भूत-प्रेत की बाधा से पीड़ित है जो हमेशा उलटे ही काम करता है ।

घर पास आने पर सोमशर्मा ने श्रेणिक का साथ छोड़ दिया और अकेले ही घर में प्रवेश किया । सोमशर्मा ने अपनी यात्रा का हाल अपनी कन्या अभयमती को सुनाया ।

अभयमती ने बड़े ध्यान से सब बातें सुनीं । वह कहने लगी - पिताजी, आपका साथी कोई अत्यन्त बुद्धिशाली और विचक्षण व्यक्ति जान पड़ता । देखिए:

(क) उसने जो कंधे पर बैठाकर ले चलने की बात कही, उसका अभिप्राय था मार्गजन्य थकान दूर करना । मार्ग में कथा-कहानी कहते हुए चलने से यात्रा सुखकर हो जाती है ।

(ख) खेत के संबंध में आपके साथी ने जो जिज्ञासा व्यक्त की, उसका अभिप्राय निम्न प्रकार से समझना चाहिए: (अ) यदि किसी व्यक्ति के पास अपना खुद

१-३ इन पहेलियों के लिये देखिए, शीलवती की कथा, सोमप्रभ सूरि, कुमारपालप्रतिबोध, प्रस्ताव ३. हिन्दी रूपांतर के लिए देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, रमणी के रूप, शीलवती की चतुराई, पृ १४-२०; प्राकृत साहित्य का इतिहास, द्वितीय संस्करण, ४०३-५; अंग्रेजी रूपान्तर के लिए जगदीशचन्द्र जैन, [illegible] इंडियन [illegible] थीमैन, जर्नल ६, पृ २६-४६. [illegible] १९७९; तुलना कीजिए, [illegible] ८, २२८; [illegible] ७८, पृ ३४९; [illegible] ७८ ।

का अन्न है, और वह खाता है दूसरों का, तो इसका मतलव है कि वह अपने खेत को ही मूल रूप से खा जाता है; (आ) यदि कोई अपने घर आकर अपने खुद के अन्न को सुखपूर्वक खाता है तो इसका मतलव है कि वह अपने खेत का उपभोग कर रहा है; (इ) यदि अपने घर पहुच कर वह जीर्ण अन्न का उपभोग करता है तो इसका मतलव है कि वह निश्चय से भविष्य मे अपने खेत का उपभोग कर सकेगा ।

(ग) वृक्ष की छाया मे वैठकर सिर पर छाता लगाने का मतलव है जिससे कौए आदि की वीट से रक्षा की जा सके ।

(घ) जल मे जूते पहनकर चलने का मतलव है जिससे जल के कांटो और पत्थरो से रक्षा हो सके ।

(२) उक्त कथानक के साथ जुड़ा हुआ इसी प्रकार का एक अन्य रोचक प्रहेलिका-आख्यान आता है जिसकी गणना विश्वकथा साहित्य मे की जा सकती है :

(क) एक वार राजा श्रेणिक ने नद ग्रामवासियो को आदेश दिया कि वे अपने वट-कूप को साथ लेकर राजगृह मे आये । ग्रामवासियो को राजा का आदेश पाकर वड़ी चिन्ता हुई । वे सोचने लगे कि वट-कूप कोई हाथ मे उठाकर ले जाने की चीज तो है नहीं, फिर राजाज्ञा का पालन कैसे किया जाये । इस वीच घूमता-फिरता राजपुत्र अभयकुमार[१] वहां पहुंचा । ग्रामवासियो ने वड़े चिन्तातुर मन से राजपुत्र को अपनी समस्या सुनाई । अभयकुमार ने उत्तर दिया - "चिन्ता करने की विल्कुल भी जरूरत नही । आप लोग राजा के पास जाकर निवेदन करे - 'महाराज, हमने वट-कूप से वार-वार चलने को कहा, लेकिन वह तो गांव के वाहर अड़कर वैठ गया है । वह कहता है कि जव तक वट-कूपिका का साथ न होगा, मै नही जा सकता । अतएव महाराज, वट-कूपिका को भिजवा दे ' ।"[१]

१- यहां अभयकुमार को कांचीपुर के राजा वसुपाल के ब्राह्मण जातीय मंत्री सोमशर्मा की कन्या अभयमती का पुत्र कहा गया है । श्वेतांवर परंपरा के अनुसार, वह वेन्यातट के किसी वणिक् की पुत्री नंदा अथवा सुनन्दा का पुत्र था । वौद्ध परंपरा में उसे विंविसार (श्रेणिक) और अवापालि का अवैध पुत्र वताया गया है । दूसरी परंपरा के अनुसार, वह उज्जयिनी की गणिका पद्मावती का पुत्र था । मज्झिमनिकाय के अभयराजकुमारसुत्तत के अनुसार, वह महावीर का शिष्य था लेकिन आगे चलकर वौद्धधर्म का अनुयायी वन गया, जगदीशचन्द्र जैन, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, ५०७ तथा नोट· ।

(ख) एक दिन राजा ने अपना बहुमूल्य हाथी ग्रामवासियों के पास भेजा और कहलवाया कि उसका वजन करके भेजे । जब ग्रामवासियों की समझ मे न आया कि क्या किया जाये तो अभयकुमार ने उपाय बताया : "पानी की नाव में हाथी को खड़ा कर दो और हाथी के खडे-खड़े ही नाव का जितना हिस्सा पानी मे डूब जाय, उसपर निशान लगा लो । फिर हाथी को नाव पर से उतार कर उसे पत्थरों से इस प्रकार भरो जिससे कि वह उस निशान तक पानी मे डूब जाय जितनी कि हाथी के वजन से डूबी थी । उसके बाद इन पत्थरो का वजन कर लो । जितना वजन इन पत्थरो का होगा, उतना ही वजन हाथी का समझना चाहिए ।"

(ग) राजा ने कहलाकर भेजा कि गांव के पूर्व में स्थित वट-कूप को गांव के पश्चिम मे ले जाओ । अभयकुमार के सुझाव पर ग्रामवासी गाव के पूर्व में जाकर रहने लगे जिससे वह वट-कूप गांव के पश्चिम में हो गया ।

राजा श्रेणिक की समझ में न आया कि इन गांववालों में इतनी बुद्धि कहां से आ गयी जो ये लोग उसके कहे हुए कामों को इतनी कुशलतापूर्वक तुरताफुरती कर डालते हैं । जब उसको पता लगा कि किसी विलक्षण व्यक्ति की बुद्धि इसके पीछे काम कर रही है तो राजा ने उस व्यक्ति को फौरन ही उसके सामने उपस्थित होने का आदेश दिया । किन्तु शर्त यह थी कि वह व्यक्ति न दिन मे आये, न रात्रि में, न भूमार्ग से चलकर आये, न आकाश मार्ग से, न वह किसी वाहन का उपयोग करे लेकिन उसके पास शीघ्र ही उपस्थित हो । अभयकुमार एक गाड़ी के पहियों के बीच मेढ़ा जोतकर राजा के दर्शनार्थ चल दिया ।[1]

---

१. आवश्यक चूर्णी (ई. ७ वीं शताब्दी) में इस आख्यान में अभयकुमार के स्थान पर नटपुत्र रोहक का नामोल्लेख है जो उज्जयिनी के भरत नामक नट का पुत्र था । वस्तुतः नन्दिसूत्र (२६) में औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी नाम की जो चार बुद्धियां बतायी गयी हैं, उन्हें अभयकुमार की बुद्धि के उदाहरण रूप में ही प्रस्तुत किया गया है । इनके उदाहरणों के लिए देखिए, आवश्यक निर्युक्ति ९३२-४०; हरिभद्रसूरि, उपदेशपद, गाथा १०७-१२०, पृ ७२-९१; जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ ७१ नोट, ७२ नोट । आवश्यक चूर्णी आदि में यह प्रहेलिका-आख्यान कुछ रूपान्तर के साथ प्रस्तुत है, देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां । बौद्ध परम्परा में महोसध पंडित (महाउम्मग्ग जातक, ५४६) तथा [illegible] नायक का काम करता है । मौरिस ब्लूमफील्ड के अनुसार, इस प्रकार के आख्यान गुणाढ्य की बृहत्कथा की रचना के पूर्व भारतीय कथा साहित्य में विद्यमान थे, देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत नेरेटिव लिटरेचर, पृ ७८-८०, ८० नोट ।

(३) प्रत्युत्पन्नमति का उदाहरण देखिए :-

एक वार एक वौद्ध भिक्षु और क्षुल्लक साथ-साथ ठहरे हुए थे । वौद्ध भिक्षु ने क्षुल्लक से प्रश्न किया : "वताओ इस वेन्यातट पर कितने कौए है ?"

"साठ हजार", क्षुल्लक ने उत्तर दिया ।

वौद्ध भिक्षु : "तुमने कैसे जाना ? यदि कम-ज्यादा हुए तो ?"

क्षुल्लक : 'यदि कम हुए तो कुछ उडकर वाहर चले गये है, यदि ज्यादा हुए तो वाहर से आ गये है ।'[१]

विनोदात्मक आख्यान

(१) और भी कितने ही विनोदात्मक रोचक आख्यान जैन कथा ग्रंथो मे यत्र-तत्र विखरे पड़े है जो अपने नैतिक एव धार्मिक उपदेशो को प्रभावोत्पादक वनाने के लिए पंचतंत्र, पंचाख्यान, जातक आदि लौकिक कथा-कहानियो से लिये गये है । आगे चलकर ये आख्यान अकवर, वीरवल, गोनू झा आदि के नाम से प्रसिद्ध हुए । देखिए -

(क) वकुलपुर मे भद्रशाल और चन्द्रशाल नाम के दो मंत्रि-पुत्र रहते थे । भद्रशाल अवसर को खूव अच्छी तरह समझता, और चन्द्रशाल अवसर पर वोलना जानता था । निर्धनता को प्राप्त होने पर दोनो ने अमरपुर के राजा देवानन्द के दरवार मे नौकरी कर ली । लेकिन राजा इतना कंजूस था कि वह उन्हे कभी कुछ नही देता था । यदि कभी वे कोई शावासी का काम करते तो वह केवल अपने दांतो की शुभ्र पंक्ति दिखाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर देता । मत्री-पुत्रो को राजा का यह व्यवहार अच्छा न लगता लेकिन वे कर ही क्या सकते थे ? एक दिन राजा अश्वक्रीड़ा के लिए गया हुआ था । रास्ते में अश्व ने राजा को गिरा दिया और उसके आगे के चार दांत टूट गये । राजा के घर लौटने पर मंत्री-पुत्रो ने राजा की नौकरी छोड़कर चले जाने की अनुमति चाही । नौकरी छोड़कर जाने का कारण पूछने पर उन्होने कहा - "महाराज,

---

१ - हरिभद्र, उपदेशपद, गाथा ८५ टीका, पृ ६१

आपका उज्ज्वल हास्य व्यक्त करने वाले आपके आगे के शुभ्र चार दांत हमारी एक मात्र आशा थी । दुर्भाग्य से यह आशा भी अब समाप्त हो गयी । अब हम यहाँ रहकर क्या करेंगे ?"

यह सुनकर राजा ने उस दिन से दोनों की नौकरी बांध दी ।[1]

(ख) एक बार किसी राजा ने पंडितों को आदेश दिया कि वे लोग शहर के कुंड को दूध से भर दें । हर पंडित को कुंड में दूध का घड़ा डालने को कहा गया । एक पंडित के मन में विचार आया कि सब लोग तो अपना-अपना दूध का घड़ा कुंड में डालेंगे ही, फिर यदि वह अकेला रात को चुपके से पानी का घड़ा उसमें डाल दे तो किसी को भी पता न चलेगा । यह सोचकर उसने पानी का घड़ा भरकर कुंड में डाल दिया । जो विचार एक पंडित के मन में आया था, वही दूसरे पंडित ने भी सोचा । उसने भी पानी का घड़ा कुंड में डाल दिया । यही तीसरे, चौथे और अन्य पंडितों ने किया । प्रात:काल उठकर देखा तो कुंड पानी से लगातार भरा हुआ था । कहा भी है :

यद यदेको बुधो वेत्ति तत्तदेवापरे बुधा: ।
पय: स्थाने पय: क्षिप्तं सर्वै: नृपतिपडितै: ॥

— जो एक पडित ने सोचा, वही दूसरों ने भी । समस्त राज पंडितों ने दूध की जगह जल का ही प्रक्षेपण किया ।[2]

(ग) कोई वणिक् जंगल में वृक्ष काटने गया । जब वह वृक्ष काटने को उद्यत हुआ तो एक व्यन्तर देव ने उपस्थित होकर निवेदन किया, "मालिक, कृपाकर मेरे वृक्ष को न काटें, मैं आपको वांछित फल दूंगा ।" वणिक् व्यन्तर को अपने घर ले गया । वणिक् जो काम उसे सौंपता, उसे वह झटपट कर डालता । वणिक् ने व्यंतर से अनेक धवल मंदिर आदि भवनों का निर्माण कराया । व्यंतर हमेशा कुछ-न-कुछ करने के लिए लालायित रहता । जब कोई काम करने को शेष न रहा तो वणिक ने उसे पर्वत

---

१ - [illegible]

२ - [illegible]

से एक लम्बा वांस लाने को कहा । फिर उसे आदेश दिया कि इस वांस को जमीन मे गाडकर इसपर चढ़ता-उतरता रहे । व्यंतरदेव हंसकर अपने घर लौट गया ।[1]

पशु-पक्षियों के आख्यान

(१) पशु-पक्षियों की भी कितनी ही मनोरंजक कथाएं जैनकथा ग्रंथो मे मिलती है :

(क) किसी सियार को एक मरा हुआ हाथी मिला । वह सोचने लगा - "मैं कितना भाग्यवान हूं ! निश्चिन्त होकर इसे खाऊंगा ।"

इस वीच वहां एक सिंह आ पहुंचा । कुशल-क्षेम पूछने के वाद सिंह ने पूछा - "इसे किसने मारा है ?"

"व्याघ्र ने महाराज", सियार ने उत्तर दिया ।

सिंह ने सोचा - "अपने से छोटो द्वारा मारे हुए शिकार को खाना उचित नहीं ।"

वह चला गया ।

इतने मे व्याघ्र आ गया । व्याघ्र के पूछने पर सियार ने सिंह का नाम ले दिया ।

व्याघ्र पानी पीकर चला गया ।

थोड़ी देर वाद कौआ आया । गीदड़ ने सोचा - "यदि इसे न दूंगा तो यह कांव-कांव करेगा और इसकी कांव-कांव सुनकर और वहुत से कौवे इकट्ठे हो जायेंगे । फिर वहुत-से सियार आ जायेंगे । किस-किसको रोकूगा मैं ?

सियार ने कौवे की तरफ मांस का एक टुकड़ा फेंक दिया । कौवा उसे लेकर उड़ गया ।

उसके वाद एक सियार आ धमका । पहले सियार ने सोचा - यह मेरी वरावरी का है, इसे मार भगाना ही ठीक होगा ।

---

१ - वही, ऐक वणिक् कथा १८; तुलना कीजिए, अकबर-बीरबल की कथा से ।

उसने भृकुटी तान कर उसे ऐसी लात जमाई कि वह भागता ही नजर आया ।

किसी ने ठीक ही कहा है :

उत्तम प्रणिपातेन शूरं भेदेन योजयेत् ।
नीचमल्प प्रदानेन समतुल्यं पराक्रमैः ॥

— उत्तम को नम्र होकर, शूर को भेद द्वारा, नीच को थोड़ा-सा देकर और बराबरी वाले को पराक्रम से जीते ।[१]

(ख) किसी नगर में हरिशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था । उसने कपिला नाम की अपनी ब्राह्मणी को एक नेवला लाकर दिया । ब्राह्मणी के कोई संतान नहीं थी । उसने नेवले को बड़े प्यार से पालकर बड़ा किया । कुछ समय बाद ब्राह्मणी ने एक पुत्र को जन्म दिया ।

एक दिन की बात है कि उसने अपने शिशु को खाट पर सुला दिया और उसे नेवले को सौंपकर नदी पर पानी भरने चली गयी । इस बीच एक सर्प ने घर में प्रवेश किया । उसने खाट पर सोते हुए शिशु को देखा । ज्यों ही नेवले की नजर सर्प पर पड़ी, उसने झटसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले । सर्प को मारकर उसने शिशु को खाट के नीचे सुला दिया ।

ब्राह्मणी नदी से पानी भरकर लौटी । सबसे पहले उसकी नजर खाट पर पड़ी । जब उसने देखा कि उसका शिशु वहां नहीं है तो उसके होश-हवास गुम हो गये । उसने समझा, अवश्य ही इस नेवले ने उसके शिशु के प्राण ले लिये हैं । उसने आव देखा न ताव । वह झट से मूसल उठाकर लाई और नेवले के टुकड़े कर दिये ।

कहा भी है :

अपरीक्षित न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम् ।
पश्चाद् भवति संतापो ब्राह्मणी नकुलं यथा ॥

१- दशवैकालिक चूर्णी, [illegible] । गुणचन्द्रगणि कृत [illegible] (... पृ [illegible]) में [illegible] (...) में भी यह कहानी [illegible] के साथ आती है । [illegible] श्लोक यहां उद्धृत है । महाभारत (आदिपर्व, [illegible]) में निम्न श्लोक हैं :

— विना परीक्षा किये कोई काम न करना चाहिए । अच्छी तरह परीक्षा करके ही काम करना उचित है । अन्यथा मनुष्य को पश्चात्ताप का भागी होना पड़ता है, जैसे कि ब्राह्मणी नेवले को मारकर हुई ।[1]

(ग) किसी वट वृक्ष पर एक सौ हंस रहते थे; उनमें एक हंस वृद्ध था । वट वृक्ष के नीचे कौशांबी की एक लता उगी हुई थी ।

एक दिन वृद्ध हंस ने हंसो को संवोधित करते हुए कहा : "देखो, बडी होने पर यह लता हमारे अनर्थ का कारण हो सकती है, अतएव इसे उखाड़कर फेंक देना ही ठीक होगा ।" लेकिन प्रमादवश किसी ने लता को उखाडने का प्रयत्न नही किया ।

लता बड़ी होकर फैल गयी । एक दिन कोई वहेलिया वहां आया । उसने उस लता पर चढ़कर हंसो को पकडने के लिए जाल फेका । सब हंस जाल मे फस गये ।

वृद्ध हंस ने कहा - "मैने पहले ही कहा था कि बड़ी होने पर यह लता अपने अनर्थ का कारण हो सकती है, तुम लोगो ने प्रमादवश इस ओर ध्यान नही दिया ।"

फिर वह बोला, "खैर, कोई बात नही, घवराने से कोई फायदा नही । तुम सब लोग मृतक के समान लेट जाओ । वहेलिया तुम्हारे पास आकर, तुम्हे मृतक समझकर एक ओर जमीन पर रख देगा । वस तुम लोग फुर्र से उड़ जाना ।"

वहेलिया खुशी-खुशी हसो के नजदीक आया । उन सवको मरा हुआ जान वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उसने वृद्ध हस के सिवाय वाकी ९९ हंसो को जाल मे से निकालकर जमीन पर रख दिया । लेकिन वह क्या, हंसो के जमीन पर रखते ही वे आकाश मे उड़ गये !

अव वृद्ध हस की वारी आई । वहेलिया उसे पकड़कर मारने लगा । वृद्ध हस ने उसे ऐसा करने से रोका । वह कहने लगा - "देखो वहेलिये, तुम नही जानते, मेरी विष्ठा वहुत कीमती है, उससे कोढ़ दूर हो जाता है । यदि तुम मुझे किसी राजा को दोगे तो मालामाल हो जाओगे ।"

---

१ - हरिषेण, बृहत्कथाकोश, १०२ २; भगवती आराधना (११२५) में भी, शुभशीलगणि कृत प्रबन्धचन्द्र में (४१५.पृ २२३); तुलनीय हितोपदेश (४११) और पचतत्र (५.१) की कहानी मे ।

वृद्ध हंस की बात बहेलिये की समझ में आ गयी । उसने उस हंस को किसी राजा को बेच दिया । राजा की रानी ने उसे पिंजडे में बंद करके रखने का आदेश दिया । मंत्रियों ने सुझाव दिया कि बिचारा वृद्ध है, उसे छोड़ देना ही ठीक होगा । राजा उसकी विष्ठा से अपना कोढ़ दूर करने में लग गया ।

यह देख कर वृद्ध हंस ने निम्न श्लोक पढ़ा:

प्रथमे स्यामहं मूर्खो द्वितीये पाशबंधकः ।

तृतीये नृपतिर्मूर्खश्चतुर्थे मंत्रिमण्डलम् ॥

— पहला मूर्ख मैं था, दूसरा मूर्ख जाल लगाने वाला बहेलिया, तीसरा मूर्ख राजा और चौथा मूर्ख मंत्रिमंडल ।[१]

(घ) किसी नदी के किनारे एक बंदर रहता था । उस नदी में एक मगरमच्छ रहा करता था ।

एक दिन बंदर के शरीर को देखकर मगरमच्छ की औरत को उसका कलेजा खाने की इच्छा हुई । मगरमच्छ ने कहा, 'देखूंगा' ।

एक बार बंदर को नदी किनारे बैठा देख, मगरमच्छ ने उसे गंगा के उस पार जाकर स्वादिष्ट फल चखने के लिए निमंत्रित किया ।

बंदर की स्वीकृति मिलने पर मगरमच्छ उसे अपनी पीठ पर बैठाकर नदी में तैरने लगा । कुछ दूर जाकर मगरमच्छ ने उसे यहां लानेका कारण पूछा । मगरमच्छ ने सच-सच बता दिया ।

बंदर ने तुरत जवाब दिया, "यदि ऐसी बात थी तो तुमने पहले से क्यों नहीं कहा । देखो, हम लोग अपना कलेजा साथ में लिये नहीं फिरते ।" फिर उसने एक गूलर के पेड़ की ओर इशारा करते हुए कहा - 'देखो, यह रहा मेरा कलेजा ।'

मगरमच्छ बंदर को वापिस लेकर चल दिया । बंदर जब किनारे पर पहुंचा तो वह झट से कूदकर गूलर के पेड़ पर जा बैठा । कहा भी है:

उत्पन्नेषु च कार्येषु बुद्धिर्यस्य न हीयते ।

स एव तरते दुर्गं जलान्ते वानरो यथा ॥

---

१. शुभशील-गणि, पंचशती प्रबोध [illegible] २०४, पृ २१८। [illegible] १९६८ ।

— परिस्थिति आने पर जिसकी बुद्धि क्षीण नही होती है, वही जल में बंदर की भांति कठिनाइयो को पार कर सकता है ।[1]

(ड) किसी जंगल मे कुरंटक नाम का एक गीदड़ रहता था । कुरंटा उसकी गीदड़ी का नाम था । एक वार कुरंटा जब गर्भवती हुई तो उसने अपने स्वामी से प्रसव के लिए कोई स्थान ढूढने के लिए अनुरोध किया । गीदड ने कहा, 'देखूंगा ।'

एक दिन की वात है, गीदडी अपने स्वामी के साथ घूमती-फिरती किसी व्याघ्र की गुफा मे पहुच गयी । उसने कहा, "स्वामिन् अव तो एक कदम भी नही चला जाता । गीदड ने जवाव दिया, "तो इस गुफा मे ही प्रसव कर लो ।"

गीदड ने उसे सीख देते हुए कहा, "देखो प्रिये, तुम मुझे रणभंजन नाम से पुकारना, मै तुम्हे अरिवग्राग्ने कहकर बुलाऊगा । जव व्याघ्र आये तो अपने वच्चो को रुला देना । रोने का कारण पूछने पर जवाव देना कि उन्हे भूख लगी है ।"

इतने मे व्याघ्र आ पहुचा । गीदड़ी के वच्चो के रोने की आवाज सुनाई पड़ी । गीदड़ ने पूछा, "अरी अरिवग्राग्ने, वच्चे क्यों रो रहे है ?"

"अरे रणभजन, उन्हे भूख लगी है," गीदड़ी ने उत्तर दिया ।

"उन्हे चुप कर । देख, अभी व्याघ्र आयेगा, उसका मास खिलाकर उन्हे शांत करूंगा ।"

यह सुनकर व्याघ्र ने सोचा, "यह तो कोई वड़ा जानवर मालूम होता है । इसके तो नाम से भी डर लगता है । अव यहां रहना ठीक नही ।" व्याघ्र वहां से चंपत हुआ ।

पास के पेड पर वैठा हुआ एक वंदर यह सव देख रहा था । वह वृक्ष से उतरकर आया और व्याघ्र के पास जाकर कहने लगा, "हे शार्दूल महाराज, आप अपनी गुफा छोडकर कही न जाये, वापिस चलिए । यह कोई वड़ा जानवर नही, यह तो गीदड़ो का जोडा है । इस धूर्त गीदड़ ने आपको ठग लिया है ।"

---

१ - विनोदकथासग्रह, कथा ७२; तुलनीय सुसुमार जातक (२०८) ।

व्याघ्र - ना भई ना, मैं लौटकर हर्गिज नहीं जाऊंगा । मुझे तो तुम भी उसी के अनुचर जान पड़ते हो । तुम मुझे मारकर भाग जाओगे, मैं तुम्हारा क्या कर लूंगा ?

बन्दर - आइए, हम दोनों अपनी गर्दन को एक साथ रस्सी से बांधकर गुफा में चलें ।

व्याघ्र ने कहा - "ठीक है ।"

दोनों एक साथ अपनी गर्दन को रस्सी से बांधकर गुफा में पहुंचे । गीदड़ ने सोचा, "अवश्य ही मेरी चेष्टाएं देखकर यह दुष्ट बंदर इसे यहां लेकर आया है ।" उसने गीदड़ी से कहा, "देख, जंगल में रहने वाला मेरा प्राणप्रिय मित्र व्याघ्र को लेकर अभी आता ही होगा ।"

यह सुनकर व्याघ्र अपनी जान लेकर वहां से भागा । उसके गले में बंधा हुआ बंदर का शरीर कांटों के जाल से क्षत-विक्षत हो गया ।

गीदड़ अपनी गीदड़ी और बाल-बच्चों के साथ वहां आराम से रहने लगा ।

कहा भी है -

बलतो महती बुद्धिस्तत्कालं जायते यदि ।
विगोपितौ कपिव्याघ्रौ शृगालेन बलं विना ॥

— तात्कालिक होने वाली बुद्धि बल की अपेक्षा बड़ी है । गीदड़ ने बल के बिना ही बंदर और व्याघ्र को भगा दिया ।[1]

लौकिक सूक्तियां

लौकिक सूक्ति-प्रधान कहानियां भी जहां-तहां मिल जाती हैं :-

(क) मन को नियंत्रित रखने के लिए किसी तापस के वृत्तान्त में कहा है :

१- [illegible]

आंखि न मींचसि मींचि मन
नयन निहाली जोइ ।
जइ मन मींचसि आपणउं
अवर न बीजी कोइ । (पंचशतीप्रबंध, १.६९, पृ. ३८)

(ख) सत्पात्र दान के संबंध में :-

"यदास्ति पात्रं न तदास्ति वित्तं
यदास्ति वित्तं न तदास्ति पात्रं ।
एवं हि चिन्तापतितो मधूक:
मन्येऽश्रुपातैं रुदनं करोति ।

— जब पात्र है तब धन नहीं, जब धन है तब पात्र नहीं ।

इस प्रकार चिन्ता से ग्रस्त हुआ मधूक अश्रुपात करके रुदन कर रहा है । (वही, १.७७, पृ. ४२)

(ग) पठितेनापि मर्तव्यं शठेनापि तथैव च ।
उभयोर्मरणं दृष्ट्वा कण्ठशोष: करोति क: ॥

— जो पढ़ता है वह भी मरता है और जो नहीं पढ़ता वह भी मरता है । दोनों का मरण देखकर कण्ठ को सुखाने से क्या लाभ ? (विजयलक्ष्मीसूरि, उपदेशप्रासाद, १५.२१५, पृ ७५)

(घ) पत्त परिक्खह किं करु, दीजे मग्गंताहिं ।
किं वरिसंतो अंबुहरु, जोवे समविसमा हिं ॥ (वही, १५.२१७, पृ. ८२)

— पात्र की परीक्षा करके क्या करोगे ? जो मांगता है उसे दो । क्या पानी बरसाने वाला मेघ सम-विषम में भेद करता है ?

(ड) हुं तुंहि वारु साधुजन, दुज्जणसंग निवार ।
हरे घड़ी जल झल्लरी, मत्थे पड़े पहार ।
(वही, १८.२५७, पृ. १७०)

— हे साधुजन, मैं तुझे रोकता हूं, तू दुर्जनों की संगत छोड़ दे । मस्तक पर प्रहार होने से सिर पर रक्खे हुए घड़े का जल नष्ट हो जाता है ।

(च) नीच सरिस जउ कीजे संग, चढ़े कलंक होइ जसभंग ।

हाथि अंगार ग्रहे जो कोइ, के दाझे के कालो होइ ॥ (वही)

— नीच की सगत करने से कलंक सिर पर चढ़ जाता है और यश-भंग होता है । यदि कोई हाथ में अंगार लेगा या उसका हाथ जल जायेगा या फिर काला हो जायेगा ।

(छ) राग व्याप खुंखार भणीजें, कथा व्याप हुंकार सुणीजे ।

प्रीति व्याप जीकार कहीजें, कलह व्याप तुंकार भणीजे ॥

(हेमविजयगणि, कथारत्नाकर, कलिकला में सोढि नागर

(ब्राह्मणी और श्रेष्ठी स्नुषा की कथा, पृ. ५६)

— क्रोध होने पर खुखार करते हैं, कथा-कहानी में हुंकार सुनते हैं, प्रेम में जीकार करते हैं और कलह में तूकार करते हैं ।

(ज) लेहेणा की जड़ मांगणा, रोगो की जड़ खांसी ।

दालिद की जड खाउं खाउं, लड़ाइ की जड़ हांसी ॥ (वही)

— उधार की जड़ है मांगना, रोगों की जड़ है खांसी, दारिद्र्य की जड़ है खाउ खाउ और लड़ाई की जड़ है हंसी ।

(झ) साहसिया लच्छी हवे, न हु कायरपुरिसेहि ।

काने कुंडल रणझणे, कज्जल पुण नयणाहि ॥

(वही, मल्लविषये धरनृपकथा, २६, पृ. ७१)

- साहसी लोग ही लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं, कायर पुरुष नहीं, उसके कानों के कुंडल रुनझुन करते हैं और नयन काजल से शोभित रहते हैं ।

(ञ) जे जस होय सहावड़ा, ते फीटे मरणांग ।

सुणला वंकी पुंछडी, सभी न कीजे कोय ॥

(वही, ज्ञाने भीमवणिक् कथा, १२५-२६)

— जिसका जैसा स्वभाव होता है वह मरने पर ही नष्ट होता है । कुत्ते की टेढ़ी पूछ कभी सीधी नहीं हो सकती ।

(ट) पिउणो लच्छी भउणी, परलच्छी मज्य होइ परदारा ।

नेग सप्पुरिसाणं न हु जुज्जइ ताण संभोगो ॥

(वही, सत्त्वे चतुर्मित्र कथा, ४५, १४०)
— पिता द्वारा अर्जित लक्ष्मी बहन है, दूसरे द्वारा अर्जित लक्ष्मी परदारा है, अतएव सज्जन पुरुषों को उनके साथ संभोग करना उचित नही ।

इस प्रकार हम देखते है कि जैन साहित्य कथा-कहानियो का विशाल भंडार है । इसमे सभी तरह की कथाओ का अन्तर्भाव होना है — धर्मकथा, अर्थकथा, कामकथा, धूर्त-पाखडियो की कथा, मुग्धजनो की कथा, कुट्टिनियो की कथा, बुद्धि चमत्कार की कथा, पशु-पक्षियों की कथा आदि ।

भगवान् महावीर अपनी वात को सक्षेप मे कहते थे । अपने उपदेश को वे उपमा, उदाहरण, दृष्टान्त, रूपक, संवाद और लोक-प्रचलित कथा-कहानियो द्वारा बोधगम्य और मनोरंजक बनाने का प्रयत्न करते थे जिससे कि सामान्यजन लाभान्वित हो सके । आरंभ मे बडे आख्यान और कथानको के स्थान पर सुपरिचित पशु-पक्षी आदि के दृष्टान्तों द्वारा धर्म एव नीति का प्रतिपादन किया जाता था । आगे चलकर देश और काल की परिस्थितियो के अनुसार आख्यानो और कथानको की रचना होने लगी — कुछ परपरागत उपमाओ और दृष्टान्तो के आधार से कथानक तैयार किये गये और साथ ही नये कथानक भी सामने आये । क्रमशः इन कथानको मे धार्मिक एवं नैतिक तत्वो का समावेश हुआ । यह सब होते हुए भी कथा का मौलिक गुण - उसकी रोचकता - उसमे बराबर कायम रही ।

क्रमशः कथाकोशो का निर्माण हुआ, उपदेश-प्रधान औपदेशिक कथा साहित्य की रचना हुई और महान् पुरुषो के चरित लिखे गये । साधु-साध्वियो, श्रावक-श्राविकाओं, श्रेष्ठियो, व्यापारियो, सार्थवाहो और धर्मोन्नायको के वृत्तान्त रचे गये । मध्यकाल मे गुजरात, मालवा, राजस्थान तथा दक्षिण भारत में अनेक विद्वानो का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रश, पुरानी हिन्दी, पुरानी गुजराती, राजस्थानी, कन्नड़ और तमिल मे जैन कथा साहित्य की रचनाकर भारतीय कथा साहित्य को समृद्ध बनाया ।

लोक-संग्राहक वृत्ति की प्रमुखता

जैनधर्म में आरंभ से ही लोक-संग्राहक वृत्ति की प्रमुखता देखने में आती है । भगवान महावीर ने मनुष्य मात्र के कल्याण की बात सोची थी, किसी जाति या वर्ग के कल्याण की नहीं । निर्ग्रन्थ धर्म के अनुयायियों को साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका को व्यापक रूप में चतुर्विध संघ में विभाजित करना, इसी लोक-संग्राहक वृत्ति का सूचक है । महावीर ने दूर-दूर तक ग्रामानुग्राम पदयात्रा करके आर्य और अनार्य सभी जातियों को अपनी आवश्यकताओं को परिमित करने का उपदेश दिया था ।

जनपद-विहार महावीर के धर्मप्रचार का प्रमुख अंग रहा है । अपने साधुओं को उन्होंने चारों दिशाओं में धर्म-प्रचार हेतु भेजा था । साधुगण विभिन्न जनपदों की यात्रा कर इन जनपद-वासियों की बोलियों में कुशलता प्राप्त करते, लौकिक वार्ता और कथा-कहानियों में अवगत होते, सामाजिक स्थिति की जानकारी प्राप्त करते एवं प्रचलित रीति-रिवाजों को समझते-बूझते । तत्पश्चात् द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को ध्यान में रख, लौकिक कथा-कहानियों के माध्यम से अपना उपदेश देते ।

कोई भी संस्कृति या धर्म क्यों न हो, लोक और समाज को लेकर ही उसका विकासमान होना संभव है; लोक-जीवन को छोड़ देने से वह निर्जीव बनकर रह जाता है । भारतीय संस्कृति के विकास की यही कहानी है । समय-समय पर कितनी ही विदेशी संस्कृतियों ने भारत में प्रवेश किया किन्तु सभी भारतीय संस्कृतियों में घुल-मिल गयीं ।

लौकिक देवी-देवताओं की मान्यता

जीवन में लौकिक देवी-देवताओं का विश्वास बहुत प्राचीन काल से चला आता है । वृक्ष, पशु-पक्षी, नदी, तड़ाग, समुद्र आदि नैसर्गिक वस्तुओं की पूजा-उपासना आदिम काल से चली आती है । प्रकृतिजन्य चीज, खाद्य पदार्थ भी

प्राप्ति तथा संक्रामक रोग और शत्रु के आक्रमण आदि से अपनी रक्षा के लिए आदि-मानव लौकिक देवी-देवताओ की मनौती करता रहा है । श्वेतांवर परंपरा द्वारा मान्य अंगविद्या ईसा की चौथी शताव्दी की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है जो प्राय: अन्यत्र अनुपलव्ध सांस्कृतिक सामग्री से समृद्ध है । आर्यो और म्लेच्छो के यहां अलग-अलग देवता वताये गये है । लौकिक देवताओ मे सागर-देवता, नदी-देवता, गिरि-देवता, पृथ्वी-देवता, तड़ाग-देवता, हल-देवता, अरण्य-देवता, ग्राम-देवता आदि, वैदिक देवताओ में पितर-देवता, प्रेत-देवता, अग्नि-देवता, मारुत-देवता, यम-देवता, रात्रि-देवता आदि, तथा अन्य देवताओ मे वनस्पति-देवता, श्मशान-देवता, वर्च (शौचगृह)-देवता, और उक्कुरुडिक (कूड़ा-कचरा फेकने की कूडी)-देवता आदि के नाम गिनाये गये है । जैनग्रंथों मे इन देवी-देवताओ का उल्लेख पाया जाना महत्त्वपूर्ण है । इसके अतिरिक्त इन्द्रमह, स्कन्दमह, यक्षमह और भूतमह - इन चार लौकिक महामहो का उल्लेख मिलता है जो प्राचीन काल में वड़ी धूमधाम से मनाये जाते थे ।

यक्षपूजा का सवसे अधिक महत्त्व रहा है । नगरो मे अथवा नगरो के वाहर यक्षायतन, व्यंतरायतन अथवा चैत्य वृक्ष वने रहते जहा महावीर, वुद्ध अथवा अन्य साधु-संत चातुर्मास आदि के लिए ठहरा करते । चंपा नगरी मे पूर्णभद्र नामक चैत्य का वर्णन औपपातिक सूत्र मे मिलता है । ग्रामवासियो की सक्रामक रोग आदि से रक्षा करने के लिए गांवके वाहर यक्ष की स्थापना की जाती । संतानोत्पत्ति आदि के लिए भी यक्ष-मंदिर मे पहुंचकर लोग यक्ष की मनौती किया करते । विहार के गांवो में मान्यता चली आती है कि मलंग वावा वड अथवा पीपल के वृक्ष पर वास करते हैं और लोगो का हित करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं । कच्छ मे हिन्दू कही जाने वाली संघार जाति जख (यक्ष) की उपासक है और प्रचलित मान्यता के अनुसार सैकडों वर्ष पूर्व रतन वावा नामक संघार ने ७२ जखो की रक्षा की थी और तभी से संघार जाति जख की उपासना करती आ रही है । भुज परिसर मे घोड़ो पर सवार ७२ जखो की मूर्तियो का इस पंक्तियो के लेखक ने अध्ययन किया है ।

जैन परंपरा मे जिन शासन की रक्षार्थ यक्षो को शासन देवता के रूप मे स्वीकार किया गया है, अतएव जैन मंदिरों मे उन्हे प्रतिष्ठापित किया जाता है ।

प्रत्येक तीर्थंकर का एक यक्ष और एक यक्षी से संबंध है ।[1] तीर्थंकर के दाहिनी ओर यक्ष और बायी ओर यक्षी स्थापित की जाती है । उल्लेखनीय है कि १३वीं शताब्दी के विद्वान पंडित आशाधरजी ने अपने सागारधर्मामृत में स्पष्ट कहा है कि विपत्तियों में ग्रस्त होने पर भी दार्शनिक श्रावक उनके निवारण के लिए शासन-देवताओं की उपासना नही करता । सोमदेव सूरि ने भी उपासकाध्ययन (ध्यान प्रकरण, ६९७-९९) में लिखा है कि "त्रिलोक के द्रष्टा जिनेन्द्र देव और व्यन्तरादिक देवों की जो समान रूप से उपासना करता है, वह नरक का भागी होता है । किन्तु विशेष ध्यान रखने की बात है कि फिर भी जिन शासन की रक्षा के हेतु परम आगम में शासन देवताओं की कल्पना को मान्य किया गया है ।(वही, ६९८) ।

लौकिक मान्यताओं को स्वीकार करने का ही यह परिणाम था कि दक्षिण भारत में ज्वालामालिनी, पद्मावती, अंबिका और सिद्धायिका आदि देवियों की पूजा-उपासना की जाने लगी । तीर्थंकरों की भांति सरस्वती, चक्रेश्वरी आदि देवियों के स्तुतिपरक स्तोत्र दिगंबर और श्वेतांबर आचार्यों द्वारा रचे गये । इस संबंध में समंतभद्र का स्वयंभूस्तोत्र, मानतुंग का भक्तामरस्तोत्र, कुमुदचन्द्र का कल्याणमंदिरस्तोत्र, धनंजय कवि का विषापहारस्तोत्र, वादिराज का एकीभावस्तोत्र और श्वेतांबरीय भद्रबाहु कृत उवसग्गहर (उपसर्गहर) स्तोत्र का उल्लेख किया जा सकता है । वस्तुतः यक्ष और यक्षी का स्थान तीर्थंकर भगवान की अपेक्षा गौण ही माना गया है किन्तु दक्षिण भारत में यक्षी-उपासना आरंभ होने के बाद वे स्वतंत्र स्थान पाने के अधिकारी समझे गये, और कहीं तो तीर्थंकरों से भी ऊपर चले गये । कहा जाता है कि हेलाचार्य (अथवा एलाचार्य, ईसा की ८वीं-९वीं शताब्दी) ने अपनी कमलश्री नामक शिष्या के ब्रह्म राक्षस द्वारा ग्रस्त होने पर वह्निदेवी की पूजा-उपासना द्वारा उसे ग्रहसे मुक्त किया, तभी से दक्षिण भारत में ज्वालामालिनी देवी की उपासना प्रचलित हुई ।[2] पद्मावती देवी को भगवान पार्श्वनाथ की यक्षिणी का स्थान प्राप्त हुआ और कर्नाटक में उसे गुह्य शक्ति सम्पन्न देवी के रूप में स्वीकार कर लिया

---

१. [illegible] जयपुर, १९७८

२. पी. बी. देसाई, जैनिज्म इन साउथ इण्डिया एंड सम जैन एपिग्राफ्स, पृ. [illegible]

गया । इसी ज्वालामालिनी देवी को आठवे तीर्थकर चन्द्रप्रभ तीर्थकर की देवी के रूप मे स्वीकार किया गया । तांत्रिक प्रभाव के कारण जैनो मे यंत्र, मंत्र, और चक्र आदि की कल्पना को स्थान मिला । हेलाचार्य, इन्द्रनन्दि और जिनसेन के प्रमुख शिष्य मल्लिषेण ने तांत्रिक देवियो की साधना कर लौकिक सिद्धि प्राप्त की । ईसा की ११वीं शताब्दी के विद्वान उभयभाषा कविशेखर की उपाधि से भूषित मल्लिषेण ने दिगंबर और श्वेतांबर दोनो परंपराओ द्वारा मान्य मंत्रशास्त्र के सुप्रसिद्ध ग्रंथ भैरवपद्मावती-कल्प की रचना की । उन्होने ज्वालामालिनी-कल्प, यक्षिणी-कल्प, कामचण्डालिनी-कल्प आदि भी लिखे । उल्लेखनीय है कि आगे चलकर ज्वालामालिनी देवी को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई कि श्रवणबेलगोल मे उसकी मूर्ति की स्थापना की गयी ।

लौकिक पक्ष का प्राधान्य

कहने का तात्पर्य यही कि जैन विद्वान सदा लौकिक पक्ष को साथ लेकर चले, उसकी अवहेलना उन्होंने नही की । ईसा की १०वीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान महाकवि सोमदे सूरि ने अपने यशस्तिलकचम्पू मे लौकिक विधि पर जोर देते हुए लिखा है :

यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ।
सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधि: ॥

— जैनों के लिए लौकिक विधि प्रमाण है, ध्यान रखने की बात इतनी ही है कि उनके पालन मे न तो सम्यक्त्व को हानि पहुंचे और न व्रतो मे ही दोष लगे ।

'यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्ध नाकरणीय नाचरणीयं' - अर्थात् किसी बात के शुद्ध होने पर भी यदि वह लोकविरुद्ध है तो उसे नही करना चाहिए, न उसका आचरण ही करना चाहिये, यह सामान्य उक्ति भी इसी तथ्य को इंगित करती है । जैन श्रमणो को जनपदो मे जाकर वहां के रीति-रिवाजो को समझने-बूझने की जो बात कही गयी है, उसका भी अभिप्राय यही है कि लोकविरुद्ध कोई कार्य करने मे उन्हे

उपहास का भाजन बनने की संभावना हो सकती है । वस्तुतः समाज में रहते हुए यदि धर्मपालन की सुविधाएं प्राप्त करना है तो लोकधर्म को निबाहना आवश्यक हो जाता है । इसी बात को ध्यान में रखते हुए जैन विद्वानों ने कितने ही महत्वपूर्ण धर्म-निरपेक्ष (सेक्युलर) ग्रंथों की रचना कर भारतीय साहित्य के भंडार को समृद्ध किया है । न केवल उन्होंने लोक-सम्मत कथानक-रूढ़ियों, कथा-कहानियों, आख्यानों, उदाहरणों, उक्तियों, लौकिक देवी-देवताओं, विद्याओं और लोकप्रचलित मान्यताओं और विश्वासों को ही अपनी रचनाओं का महत्वपूर्ण अंग बनाया, बल्कि गणित, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, संगीत, धनुर्विद्या, ज्योतिष, हस्तकला विज्ञान, राजनीति आदि कितने ही उपयोगी विषयों पर भी अपनी लेखनी चलाई । अंगविज्जा (१.१) में उल्लेख है कि भगवान महावीर ने अपने गणधरों को *निमितज्ञान का उपदेश दिया था,* जो आगे चलकर दृष्टिवाद नामक बारहवें अंग में समाविष्ट किया गया । आचार्य भद्रबाहु निमित्तशास्त्र के बड़े पंडित कहे गये हैं और परंपरा के अनुसार, किसी व्यंतरदेव द्वारा संघ पर उपसर्ग किये जाने पर उन्हें उपसर्गहरस्तोत्र की रचना करने के लिए बाध्य होना पड़ा ।[1] दिगंबर और श्वेतांबर संप्रदाय द्वारा मान्य प्रज्ञाश्रमण आचार्य धरसेन को *अष्टांगमहानिमित्त-वेदी कहा गया है जो अंग, स्वर (शकुनरुत), लक्षण, व्यंजन,* स्वप्न, छिन्न, भौम और अन्तरिक्ष नामक आठ महानिमित्तों के वेत्ता थे ।[2]

उल्लेखनीय है कि यद्यपि परंपरा के अनुसार भगवान को उपदेशक कहा गया है, किन्तु जब जैन श्रमणों ने निमित्त विद्या का दुरुपयोग करना शुरू कर दिया तो उन्हें निमित्त आदि के प्रयोग करने का निषेध कर दिया गया । उत्तराध्ययन सूत्र (१५, ८, ७) जैन श्रमण के लिए मंत्र, मूल, वैद्य संबंधी चिन्ता, वमन, विरेचन, धूम, नेत्रसंस्कारक, स्नान, आतुर का स्मरण और चिकित्सा करने आदि का निषेध है । स्थानांग सूत्र (९, ६७१) में तो उत्पाद, निमित्त, मंत्रशास्त्र, आख्यायिका (मातंगी विद्या), चिकित्सा (आयुर्वेद), बहत्तर कलाएं, वास्तुविद्या, अज्ञान (महाभारत आदि लौकिक श्रुत) और मिथ्या प्रवचन (बुद्धशासन आदि) इन नौ श्रुतों की गणना पापश्रुतों में की गयी है । किन्तु यह सब होते हुए भी धर्म एवं संकट उपस्थित होने पर अपवाद मार्ग

१- [illegible]
२- [illegible]

का अवलंबन लेकर जैन श्रमणों को निमित्त, मंत्रशास्त्र, आयुर्वेद आदि का आश्रय लेने के लिए बाध्य होना पडता था । अंगविद्या की भांति जोणिपाहुड (योनिप्राभृत) भी निमित्तशास्त्र का एक महत्वपूर्ण अंग है जो दिगम्बर और श्वेतांबर दोनों संप्रदायों द्वारा मान्य है । जैन मान्यता के अनुसार इस ग्रंथ के कर्ता आचार्य धरसेन (ईसवी सन् की प्रथम और द्वितीय शताब्दी का मध्य) ने इसे कूष्माडिनी देवी से प्राप्त कर जनहित के लिए पुष्पदंत और भूतबलि नामक अपने शिष्यों के हितार्थ लिखा था । कहने का तात्पर्य है कि धार्मिक पक्ष को प्रबल बनाने के लिए ही जैन आचार्यों ने लौकिक पक्ष को — संयम और व्रत को हानि न पहुंचाते हुए - स्वीकार किया । लोकसंग्रह को महत्त्व देने के कारण ही उन्होंने साणरुय (श्वानरुत), उवसुइदार (उपश्रुतिद्वार), छायादार (छायाद्वार), पिपीलियानाण (पिपीलिका-ज्ञान), नाडीद्वार, लग्गसुद्धि (लग्नशुद्धि), दिणसुद्धि (दिनशुद्धि), शकुनरुत जैसे लौकिक ग्रंथों की रचना की । इसके अतिरिक्त पोरागम (अन्न-संस्कार शास्त्र), रत्नपरीक्षा, द्रव्यपरीक्षा (मुद्राविषयक जानकारी का ग्रंथ), वास्तुसार, अस्ससत्थ (अश्वशास्त्र), हत्थिसिक्खा (हस्तिशिक्षा), मृगपक्षिशास्त्र, पुष्पायुर्वेद[1] जैसे लोकप्रिय विषयों पर भी अपनी लेखनी चलाने में वे पीछे न रहे । कहा जा सकता है कि लौकिक पक्ष को धर्म-प्रचार के लिए आवश्यक समझकर लौकिक विषयों को अपनी रचनाओं में स्थान देकर वे विशेष रूप से यश के भागी बने । धर्मप्रचार के हेतु गुजरात, मालवा और राजस्थान में दूर-दूर तक भ्रमण करने वाले सुप्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य जिनेश्वर सूरि ने अपने कथाकोषप्रकरण में स्पष्ट रूप से घोषित किया है :

सम्मत्ताइ गुणाणं लाभो, जइ होज्ज कित्तियाणं पि ।
ता होज्ज णे पयासो सकयत्थो जयउ सुयदेवी ॥

— अर्थात्, यदि उंगली पर गिनने लायक थोडे-बहुत पाठकों को भी सम्यक्त्व — सच्ची दृष्टि — आदि गुणों का लाभ मिल सके तो लेखक अपने प्रयत्न को फलीभूत समझेगा ।

१- विशेष के लिए देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत नरेटिव लिटरेचर, ओरिजिन एण्ड ग्रोथ, में प्रमुख प्राकृत ग्रन्थों, पृ १२८-५४.

इससे निस्सन्देह जैन श्रमणों की सार्वजनीन हितैषी दृष्टि का समर्थन होता है ।

लोक एवं समाज के पक्ष को मजबूत बनाने में श्वेताम्बर परंपरा के आचार्य भी पीछे न रहे । उन्होंने मुसलमानों के रमल अथवा पाशक विद्या और ताजिक शास्त्र (फारसी भाषा में ताज़ी का अर्थ है अरबी) का अध्ययन कर तत्संबंधी ग्रंथों की रचना की । रमलविद्या में पासे डालकर भविष्य का ज्ञान प्राप्त किया जाता है । ईसवी सन् १८ वीं शताब्दी के विद्वान् मुनि भोजसागर ने अपनी 'रमल विद्या' में लिखा है कि अतीत काल में आचार्य कालक ने यवन (ईरान) देश पहुंचकर इस विद्या की शिक्षा प्राप्त की । ताजिकसार के टीकाकारों में अनेक जैन विद्वानों के नामों का उल्लेख है । हरिभद्र नाम के विद्वान ने लगभग १५२३ ई. में इसपर टीका लिखी ।[1] शुभशील गणि (१४१४ ई) कृत पंचशती-प्रबंध (१.७५, पृ. ४०-४१) में ताजिक ग्रंथ की रचना के संबंध में निम्नलिखित रोचक वृत्तांत दिया गया है ; एक बार बहुत से मुगल खुरासान (फारस का एक नगर) से गुजरात आये हुए थे । वे गुजरात के बहुत से लोगों को पकड़कर खुरासान ले गये । उनमें एक विद्वान् आचार्य भी था । वह विद्वान् वहां रहकर थोड़े ही दिनों में मुगलों की भाषा सीख गया । एक दिन जिस मुगल के घर में यह विद्वान् ठहरा हुआ था, वह शत्रु के गांव में लूटमार करने गया । मुगल की माता अपने पुत्र की अनुपस्थिति में पदच्छाया देखकर अपने ऊर्ध्वस्थित पेट को कूट-कूटकर रुदन करने लगी । वह रुदन करती और कहती जाती जाती - "हे पुत्र, तू कैसे मारा गया ? तुझे क्या हुआ ? अब मैं क्या करूं तेरे बिना ? तेरे रहते हुए ही इस कुटुंब का पालन-पोषण होता था !" किन्तु उसकी पुत्रवधू पदच्छाया देखकर रुदन करती हुई अपने सास के पास पहुंच आनंदित होकर बोली - "मां, तू रो मत, तेरा पुत्र कुशलपूर्वक है । एक तीर उसके मस्तक में लगा है, एक पैर में और एक उसके बायें हाथ में । वह लौटकर संध्या तक कुशलपूर्वक घर पहुंच जायेगा ।" यह सुनकर सास ने रोना बंद कर दिया । पुत्रवधू का कथन सत्य निकला ।

विद्वान् आचार्य ने यह सब देखा । वह सोचने लगा - "दोनों ही कुशल हैं, लेकिन पुत्रवधू अधिक कुशल ज्ञान पड़ती है ।" आचार्य ने यहां तत्काल दर्शाया.

१- वही, पृ १५०

शास्त्र का अध्ययन कर ताजिक ग्रंथ की रचना की । उसके वाद आचार्य स्वदेश लौट आये । ग्रंथ भी साथ मे लाये लेकिन वह आम्नाय-रहित हो गया । इस ग्रंथ में भूत, भविष्य और वर्तमान के संवंध मे कथन है, किन्तु तद्रूप बुद्धि न होने के कारण उसका यथार्थ ज्ञान न हो सका ।

जैन कथाकारौ का लौकिक कथा-कहानियाँ से तादात्म्य

जैन आचार्यो द्वारा लोक संग्राहक वृत्ति को लेकर चलने का परिणाम धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्रो मे ही नही, कथा-साहित्य के क्षेत्र में भी यथेष्ट रूप मे देखने मे आता है । वस्तुत: जैसे कहा जा चुका है, कहानी का अपने मौलिक रूप में किसी धर्म, नीति या सिद्धांत से संवंध नही होता, वह केवल कहानी होती है जिसका उद्देश्य केवल मनोरजन रहता है । किन्तु आगे चलकर धर्मोपदेशक लोक-प्रचलित उपमाओ, दृष्टांतो, रूपको, संवादो, प्रश्नोत्तरो, आख्यानो और कथा-कहानियों का अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए यथेष्ट उपयोग करने लगे । जैन कथा साहित्य के विकास की ओर जव हम दृष्टिपात करते है तो देखते है कि जैसे-जैसे उसमें अभिनव धाराओं का समावेश होता गया, वैसे-वैसे वह अधिक रोचक और ज्ञानवर्धक वनता गया । उदाहरण के लिए, प्राचीन जैन कथा-साहित्य मे प्राय: उपमाओ, दृष्टान्तो और उदाहरणों की ही प्रमुखता पायी जाती है, जवकि उत्तरकालीन साहित्य में कथा का विकसित रूप सामने आता है । दूसरी वात, प्राचीन लेखको के कथा-साहित्य का आधार विशेषकर प्राचीन आगम और उन आगमो पर समय-समय पर लिखी हुई टीका-टिप्पणियां रही है, किन्तु उत्तरवर्ती काल मे, जैसे-जैसे लोकप्रिय कथाओ का क्षेत्र विस्तृत होता गया, जैन कथा-साहित्य भी समृद्ध वनता गया । इस समय स्वतंत्र कथाओ का भी निर्माण हुआ । क्रमश. पैशाची प्राकृत मे लिखी हुई गुणाढ्य की वड्डकहा (वृहत्कथा), पंचतंत्र, हितोपदेश, जातककथा, वेताल-पंचविंशतिका, शुकसप्तति, सिंहासनद्वात्रिंशिका, भरटद्वात्रिंशिका आदि लोकप्रिय रचनाओ की कथा-कहानियों को जैन विद्वानों ने अपनाकर उन्हे अपने साहित्य मे उचित स्थान प्रदान किया ।

१) पंचतंत्र

सर्वप्रथम हम पंचाख्यान या (पंचाख्यानक) को ले जो जैन विद्वान पूर्णभद्रसूरि द्वारा ईसवी सन् ११९९ में समाप्त पंचतंत्र का ही संस्करण है ।[1] मूल पचतत्र अप्राप्त है । इसके उत्तरकालीन सस्करणों के आधार पर ही नीतिशास्त्र की इस महान कृति को विश्व साहित्य का गौरव प्राप्त हुआ । एशिया और यूरोप की अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद प्रकाशित किये गये । कहा जाता है कि बाइबिल के पश्चात् पचतत्र ही एक ऐसी कृति है जिसके दुनिया की सर्वाधिक भाषाओं में अनुवाद किये गये । पचतत्र के सुप्रसिद्ध अध्येता जे. हर्टल ने इस सस्करण को 'अलंकृत मूल पाठ' (Texture onnatior) कहा है जो 'सरल मूल पाठ' (Texture Splicimor) के और तन्त्राख्यायिका (रचनाकाल ईसवी सन् की तीसरी या चौथी शताब्दी) के आधार से तैयार किया गया है । अपनी रचना के अंत में विष्णुशर्मा का नामोल्लेख करते हुए लेखक ने कहा है : "सोमराजा के आदेश से, राजनीति के विवेचनार्थ, प्रत्येक अक्षर, पद, वाक्य, कथा एव श्लोक का सशोधन करके इस शास्त्र की रचना की गयी है ।" पूर्णभद्रसूरि का यह संस्करण पंचतंत्र के उपलब्ध संस्करणों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जिसका प्रचार केवल भारत में नही, भारत के बाहर भी इण्डो-चीन और इण्डोनेशिया आदि देशों में हुआ । हर्टल के कथनानुसार, इस संस्करण में कितनी ही नयी कहानियों और सूक्तियों का समावेश किया गया है जिनका स्रोत अज्ञात है । इसमें प्राकृत रचनाओं एवं लोक-प्रचलित बोलियों की कथा-कहानियों का भी उपयोग किया गया है । आगे चलकर इसके आधार से संस्कृत तथा लोक-प्रचलित बोलियों के सस्करण तैयार किये गये ।[2] श्वेतांबर विद्वान् हेमविजयगणि (१६०० ई.) ने अपने कथारत्नाकर में न केवल पंचाख्यान की शैली को अपनाया है, पंचाख्यान के नामोल्लेखपूर्वक उसकी कथाओं का भी अन्तर्भाव किया है । शुभशीलगणि (१४०४ ई.) कृत प्रबंध-पचशती और मलधारि राजशेखर कृत विनोदकथासंग्रह में भी पंचतंत्र की कहानियां मिलती हैं ।[3]

---

१ जे. हर्टल, हार्वर्ड ओरिएन्टल सीरीज, भाग ११-१२, १९०८ और १९१२

२- विंटरनित्ज़, एम., हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, जिल्द ३ भाग १, पृ [illegible] द्वितीय संस्करण १९७२

३- [illegible]

पंचतंत्र के अन्य जैन संस्करणों में, मेघविजय द्वारा १६५१-६० ई. मे रचित पंचाख्यानोद्धार का उल्लेख किया जा सकता है । बालको को नीतिशास्त्र संबंधी सरल शिक्षा देने के लिए इस ग्रथ की रचना की गयी है । इसमे बहुत-सी नयी कहानियो का अन्तर्भाव किया गया है जिनमें कुछ कहानिया तुलनात्मक लोकवार्ता के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । अंतिम कथा रत्नपाल की कथा है जो पंचतत्र के उपलब्ध संस्करणो मे नही पाई जाती । यह संस्करण १५९१-९२ ई. मे मुनि वच्छराज कृत पुरानी गुजराती-संस्करण पंचाख्यान चौपाई पर आधारित है ।[1]

पंचतंत्र का दूसरा संस्करण पंचाख्यान वार्तिक है जो कीर्तिविजय गणि के चरणसेवक जिनविजय गणि की रचना है । यह रचना विक्रम सवत् १७३० मे फलौधी नगरी मे की गयी थी । यह भी पुरानी गुजराती मे है, इसके श्लोक सस्कृत मे है । १९ वी कहानी बया और बंदर की तथा ३० वी खरगोश और मदोन्मत्त सिह की है । २६ वी कहानी कश्मीर के नवहंस राजा की है । एक बार राजा ने अपने शुक को देश - विदेश भ्रमण करने भेजा । भ्रमण करता हुआ शुक स्त्री-राज्य मे पहुचा । रानी ने उसे चार समस्याए दी और साथ मे एक मत्र । समस्याओं का समाधान करने के लिए मत्रियो को बुलाया गया । अत मे भारुड़ पक्षी-शावक को उसके पिता ने समस्याओ का समाधान सुझाया । समाधान था कि पोतनपुर मे तिलकमंजरी नामक वणिक् पुत्री राजा से प्रेम करती है ।[1]

(२) बड्डुकहा (बृहत्कथा)

महाकवि गुणाढ्य की 'अद्भुत अर्थ' व्यक्त करने वाली अनुपम साहित्यिक कृति बृहत्कथा पर आधारित सघदासगणि वाचक कृत वसुदेवहिंडि का उल्लेख किया जा चुका है । बृहत्कथा की परंपरा के अनुसार, हिमालय पर्वत के उच्च शिखर पर आसीन प्रेमवार्ता मे संलग्न शिवजी ने पार्वतीजी के आग्रह पर उन्हें प्रसन्न करने के हेतु

---

१ - पचाख्यानोद्धार की एक पहेली देखिए . धनदत्त से प्रश्न किया गया कि बता सकते हो, समुद्र मे कितना पानी है और कितना कीचड़ ? धनदत्त ने उत्तर दिया . "पानी बहुत है और कीचड़ कम, यदि विश्वास न हो तो नदी का बांध बना दो और समुद्र के पानी को गिनती कर लो ।" - विन्टरनित्स, वही, पृ २०७ और नोट ।

अद्भुत एवं अश्रुतपूर्व इस कथा का व्याख्यान किया । कथा आरंभ करने के पूर्व शिवजी ने गृह के सब द्वार बंद कर देने का आदेश दिया और नन्दी को द्वारपाल नियुक्त कर दिया गया । तत्पश्चात् उन्होंने कहना आरंभ किया : "देखो प्रिये, देवताओं के जीवन में सुख ही सुख है । उनकी कथा थकाने वाली होती है, क्योंकि उसमें एक ही बात बार-बार दुहराई जाती है । इसके विपरीत, यदि मानव की ओर दृष्टिपात करें तो वह दुःख एवं क्लेश के अथाह सागर में डूबता-उतराता हुआ दिखाई पड़ता है । दोनों ही जीवन की विविधता एवं हंसी-खुशी से वंचित हैं । अतएव सुख-दुख के सम्मिश्रणपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले विद्याधरों की अद्भुत एवं हृदयहारिणी कथा-वार्ता सुनाता हूं, उसे ध्यान देकर सुनो ।"

इतना कहकर कैलाश शिखर पर आसीन शिवजी महाराज ने पार्वती जी को सात विद्याधर-चक्रवर्ती राजाओं की अद्भुत एवं अश्रुतपूर्व कथा सुनाई जिसे सुनकर पार्वती आनन्द से गद्गद् हो उठी ।

आगे चलकर यही कथा प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन के मंत्री पद पर विभूषित सुप्रसिद्ध कवि गुणाढ्य द्वारा पैशाची प्राकृत में रचित बृहत्कथा के रूप में गुंफित की गयी । महाकवि दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट ने इस अनुपम कृति की मुक्त-कंठ से सराहा है । जैन विद्वान् भी इस कथा के असाधारण वैशिष्ट्य से प्रभावित हुए बिना न रहे । उद्योतन सूरि ने अपनी कुवलयमाला (२, २३) में बृहत्कथा को समस्त कला और ज्ञान का भंडार बताते हुए उसे 'कवियों का वास्तविक दर्पण' और उसके रचयिता गुणाढ्य को कमल पर आसीन ब्रह्मा (कमलासन) के रूप में सराहा है । इसी प्रकार आदिपुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन और यशस्तिलकचम्पू के रचयिता सोमदेव सूरि ने इस कृति का अत्यन्त आदरपूर्वक स्मरण किया है । तिलकमंजरी के कर्ता सुप्रसिद्ध धनपाल ने तो उन कवियों को उपहासास्पद कहा है जो इस महान् कृति के यत्किंचित् अंश को अपनी रचनाओं में समाविष्ट कर महाकवि कहलाने के भागी बने हैं । वे लिखते हैं :

सत्यं बृहत्कथाम्भोधेः, बिन्दुमादाय संस्कृताः ।
तेनेतरकथाः कन्थाः, प्रतिभान्ति तदग्रतः ॥(२१. ? २४)

— वृहत्कथा रूपी समुद्र से एक बूंद ग्रहण कर जो संस्कृत कथाओ की रचना की गयी है, वह केवल कंथा (थकेली लगी हुई कथड़ी) की भांति प्रतीत होती है ।

भारतीय साहित्यिक कला के क्षेत्र मे इस अनुपम कृति की तुलना महाभारत और रामायण के साथ की गयी है । वृहत्कथा का इष्ट देवता शिव अथवा विष्णु भगवान् को न मानकर, धन और कोष के अध्यक्ष तथा व्यापारियो और श्रीमन्तों के संरक्षक कुबेर को माना गया है ।

कहने की आवश्यकता नही कि लोकसंग्रह के आग्रही जैन विद्वान् ऐसी अप्रतिम अद्भुतार्थ वाली लोकप्रिय रचना का लाभ उठाये बिना कैसे रह सकते थे ? वृहत्कथा का नायक कौशांबी के राजा उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त है जिसके साहसिक कार्यो और रोमांस की कहानी यहा अत्यन्त रोचक ढग से प्रस्तुत की गई है । राजकुमार नरवाहनदत्त दूर-दूर तक भ्रमण कर अनेक नायिकाओ के साथ परिणय के सूत्र मे बद्ध होता है और अत मे विद्याधर-नरेशो पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् बड़ी धूमधाम से अभिषिक्त होकर विद्याधर-चक्रवर्ती पद को प्राप्त करता है । गुणाढ्य की इस अद्भुत कृति का जैन रूपान्तर हमे संघदासगणि वाचक कृत वसुदेवहिंडि (लगभग ईसा की तीसरी शताब्दी) मे देखने मे आता है जो प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखित है । राजा उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त की भांति वसुदेवहिंडि मे कृष्णवासुदेव के पिता वसुदेव के भ्रमण (हिंडि) की कहानी है जो देश-देशान्तर मे भ्रमण कर अनेक विद्याधर एवं नरेश कन्याओ के साथ विवाह करते है । यहां २८ लंभो मे कथानायक वसुदेव के भ्रमण-वृत्तान्त की कथा गुंफित है । इन लंभो के नाम उन सभी नायिकाओ के नाम है जिनका कथानायक के साथ परिणय हुआ है । इस महत्वपूर्ण कृति का अन्तिम (२८ वां) लंभ अपूर्ण है, मध्य के दो लभ अनुपलब्ध है और उपसहार इसमे नही है । ग्रंथ का उपसहार न होने से वृहत्कथा के काश्मीरी रूपान्तर सोमदेव कृत कथासरित्सागर एवं क्षेमेंद्र कृत वृहत्कथामंजरी की भांति संघदासगणि की इस कृति मे कथानायक वसुदेव के राज्याभिषेक एवं नायक-नायिका के मिलाप का वृत्तान्त अनुपलब्ध है । यही स्थिति वृहत्कथा के नेपाली संस्करण बुधस्वामी कृत वृहत्कथाश्लोकसंग्रह की है, इसके अपूर्ण होने के कारण यहा भी नायक-नायिका के संयोग से हम वंचित ही रहते हैं ।

अद्‌भुत एवं अश्रुतपूर्व इस कथा का व्याख्यान किया । कथा आरंभ करने के पूर्व शिवजी ने गृह के सब द्वार बंद कर देने का आदेश दिया और नन्दी को द्वारपाल नियुक्त कर दिया गया । तत्पश्चात् उन्होंने कहना आरंभ किया : "देखो प्रिये, देवताओ के जीवन में सुख ही सुख है । उनकी कथा थकाने वाली होती है, क्योंकि उसमें एक ही बात बार-बार दुहराई जाती है । इसके विपरीत, यदि मानव की ओर दृष्टिपात करें तो वह दुःख एवं क्लेश के अथाह सागर में डूबता-उतराता हुआ दिखाई पड़ता है । दोनों ही जीवन की विविधता एवं हंसी-खुशी से वंचित है । अतएव सुख-दुख के सम्मिश्रणपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले विद्याधरो की अद्भुत एवं हृदयहारिणी कथा-वार्ता सुनाता हुं, उसे ध्यान देकर सुनो ।"

इतना कहकर कैलाश शिखर पर आसीन शिवजी महाराज ने पार्वती जी को सात विद्याधर-चक्रवर्ती राजाओं की अद्‌भुत एवं अश्रुतपूर्व कथा सुनाई जिसे सुनकर पार्वती आनन्द से गद्गद् हो उठी ।

आगे चलकर यही कथा प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन के मंत्री पद पर विभूषित सुप्रसिद्ध कवि गुणाढ्य द्वारा पैशाची प्राकृत मे रचित वड्डकहा के रूप मे गुंफित की गयी । महाकवि दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट ने इस अनुपम कृति को मुक्त-कंठ से सराहा है । जैन विद्वान् भी इस कथा के असाधारण वैशिष्ट्य से प्रभावित हुए बिना न रहे । उद्योतन सूरि ने अपनी कुवलयमाला (३, २३) में वड्डकहा को समस्त कला और ज्ञान का भंडार बताते हुए उसे 'कवियो का वास्तविक दर्पण' और उसके रचयिता गुणाढ्य को कमल पर आसीन ब्रह्मा (कमलासन) के रूप मे सराहा है । इसी प्रकार आदिपुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन और यशस्तिलकचम्पू के रचयिता सोमदेव सूरि ने इस कृति का अत्यन्त आदरपूर्वक स्मरण किया है । तिलकमंजरी के कर्ता सुप्रसिद्ध धनपाल ने तो उन कवियो को उपहासास्पद कहा है जो इस महान् कृति के यत्किंचित् अंश का अपनी रचनाओं मे समावेश कर यशस्वी कहलाने के भागी बने है । वे लिखते है :

सत्यं बृहत्कथाम्भोधे: बिन्दुमादाय संस्कृता: ।
तेनेतरकथा कन्था: प्रतिभांति तदग्रत: ॥ (२१, पृ २४)

— बृहत्कथा रूपी समुद्र से एक बूंद ग्रहण कर जो संस्कृत कथाओ की रचना की गयी है, वह केवल कंथा (थकेली लगी हुई कथड़ी) की भांति प्रतीत होती है ।

भारतीय साहित्यिक कला के क्षेत्र मे इस अनुपम कृति की तुलना महाभारत और रामायण के साथ की गयी है । बृहत्कथा का इष्ट देवता शिव अथवा विष्णु भगवान् को न मानकर, धन और कोष के अध्यक्ष तथा व्यापारियो और श्रीमन्तो के संरक्षक कुबेर को माना गया है ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि लोकसंग्रह के आग्रही जैन विद्वान् ऐसी अप्रतिम अद्भुतार्थ वाली लोकप्रिय रचना का लाभ उठाये विना कैसे रह सकते थे ? बृहत्कथा का नायक कौशांबी के राजा उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त है जिसके साहसिक कार्यों और रोमांस की कहानी यहा अत्यन्त रोचक ढग से प्रस्तुत की गई है । राजकुमार नरवाहनदत्त दूर-दूर तक भ्रमण कर अनेक नायिकाओ के साथ परिणय के सूत्र में बद्ध होता है और अत मे विद्याधर-नरेशो पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् बड़ी धूमधाम से अभिषिक्त होकर विद्याधर-चक्रवर्ती पद को प्राप्त करता है । गुणाढ्य की इस अद्भुत कृति का जैन रूपान्तर हमे संघदासगणि वाचक कृत वसुदेवहिंडि (लगभग ईसा की तीसरी शताब्दी) मे देखने मे आता है जो प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखित है । राजा उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त की भांति वसुदेवहिंडि मे कृष्णवासुदेव के पिता वसुदेव के भ्रमण (हिंडि) की कहानी है जो देश-देशान्तर मे भ्रमण कर अनेक विद्याधर एवं नरेश कन्याओ के साथ विवाह करते है । यहां २८ लभो मे कथानायक वसुदेव के भ्रमण-वृत्तान्त की कथा गुंफित है । इन लंभो के नाम उन सभी नायिकाओ के नाम है जिनका कथानायक के साथ परिणय हुआ है । इस महत्वपूर्ण कृति का अन्तिम (२८ वां) लभ अपूर्ण है, मध्य के दो लंभ अनुपलब्ध है और उपसहार इसमे नही है । ग्रंथ का उपसंहार न होने से बृहत्कथा के काश्मीरी रूपान्तर सोमदेव कृत कथासरित्सागर एवं क्षेमेंद्र कृत बृहत्कथामंजरी की भांति संघदासगणि की इस कृति में कथानायक वसुदेव के राज्याभिषेक एवं नायक-नायिका के मिलाप का वृत्तान्त अनुपलब्ध है । यही स्थिति बृहत्कथा के नेपाली संस्करण बुधस्वामी कृत बृहत्कथाश्लोकसंग्रह की है, इसके अपूर्ण होने के कारण यहा भी नायक-नायिका के संयोग से हम वंचित ही रहते है ।

वसुदेवहिंडिकार ने ही नहीं, अन्य कितने ही दिगम्बर श्वेतांबर विद्वानो ने भी अपनी-अपनी रचनाओं को लोकप्रिय बनाने के लिए गुणाढ्य की इस अनमोल कृति को आत्मसात् करने का प्रयत्न किया है । दिगम्बर आचार्यों में हरिवंशपुराण के रचयिता सुप्रसिद्ध आचार्य जिनसेन (७८३ ई.), उत्तरपुराण के कर्ता आचार्य गुणभद्र (८१७ ई.) और तिसट्ठिमहापुरिस-गुणालंकारु (महापुराण) के रचयिता अपभ्रंश के सुप्रसिद्ध कवि पुष्पदंत (१० वीं शताब्दी ई) तथा श्वेतांबर आचार्यों में भवभावना के लेखक मलधारि हेमचन्द्र (११२३ ई.), और कलिकालसर्वज्ञ नाम से विख्यात त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित के प्रणेता आचार्य हेमचद्र (१२वीं शताब्दी) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इनमे आचार्य जिनसेन और आचार्य हेमचन्द्र ने गुणाढ्य की कृति को सर्वांश रूप मे तथा अन्य विद्वानो ने आंशिक रूप में अपनाया है । इस संबंध मे जिनसेन-कृत हरिवंशपुराण विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करती है ।[1]

(३) मज्झिमखंड

(कुछ वर्ष पूर्व १९८७ ई. में प्रथम भाग प्रकाशित)

यहां धर्मसेनगणि महत्तर (लगभग ५ वी शताब्दी ई.) की कृति मज्झिमखंड की चर्चा कर देना भी आवश्यक है । मज्झिमखंड को वसुदेवहिडि का द्वितीय खंड कहा जाता है, वस्तुत: दोनों रचनाओं का कोई खास संबंध नहीं जान पड़ता । धर्मसेनगणि महत्तर की कृति मज्झिमखंड को वसुदेवहिंडि का द्वितीय खंड कहे जाने का कारण मज्झिमखंड की प्रस्तावना मे लेखक का निम्न वक्तव्य उद्धृत है :

"मूल रूप में वसुदेवहिंडि में १०० लंभ थे, कारण कि वसुदेव ने १०० वर्ष तक यत्र-तत्र भ्रमण कर १०० कन्याओ से विवाह किया था । किन्तु वसुदेवहिंडिकार ने उनमे से केवल २९ लंभो में (श्यामा से लेकर रोहिणी तक : रोहिणी-

---

१ - विस्तार के लिए देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, द वसुदेवहिंडि - एन ऑथेन्टिक जैन वर्जन ऑफ द बृहत्कथा, एल डी इन्स्टिट्यूट, अहमदाबाद, १९७७

पज्जवसाणम्)[1] ही वसुदेव-भ्रमण का वृत्तान्त कहा, शेष ७१ लंभ विस्तार के भय से उन्होंनें छोड दिये । अतएव आचार्य के समीप निश्चय करके मैंने प्रवचन के अनुराग से मध्य के (प्रियंगुसुंदरीलंभ नामक १८ वें और केतुमतीलंभ नामक २१ वें लंभों के बीच के १९ और २० लंभ) लभो को जोड़ने के लिए ७१ लंभों में मज्झिमखंड की रचना की है ।"[2]

किन्तु जैसा कहा जा चुका है, ग्रंथ के परीक्षण करने से ज्ञात होता है कि वसुदेवहिंडि और मज्झिमखंड दोनो पृथक् रचनाएं है । अवश्य ही जो प्रभावतीलंभ वसुदेवहिंडि मे अत्यन्त संक्षिप्त रूप में विद्यमान है तथा त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित और हरिवंशपुराण मे किंचित् विस्तारपूर्वक उपलब्ध होता है, वह समस्त रूप में मज्झिमखंड मे पाया जाता है । इस संबंध में विशेष ध्यान में रखने की बात यह है कि यह वर्णन सोमदेव के कथासरित्सागर से (कितने ही प्रसगो पर अक्षरशः)[3] मिलता है । कहा जा चुका है कि वसुदेवहिंडि में उपसंहार का अभाव होने के कारण वसुदेव-भ्रमण की कथा अधूरी रह गयी है, किन्तु कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी की भांति मज्झिमखंड में कथानायक वसुदेव अपनी पत्नी सोमश्री के अपहरणकर्ता विद्याधर मानसवेग की हत्या न कर उसे क्षमा प्रदान कर देते हैं । मानसवेग उन दोनो को अपने विमान मे बैठाकर महापुर नगर मे लाता है जहां नायक और नायिका का

---

१ - वसुदेवहिंडि मे वर्णित २८ लंभों में वेगवतीलभ दो बार गिना गया है और अतिम देवकीलभ सन्देहास्पद माना जाता है, अतएव २६ लंभ हर जाते हैं । किन्तु धर्मदासगणि के कथन के अनुसार, देवकीलंभ को छोडकर मूल रूप में इसमें २९ लभ थे । २९ लभ होने की सभावना इस तरह बन सकती है कि वर्तमान में उपलब्ध २८ लभों में देवकीलंभ को निकाल देने से २७ लभ अवशेष रह जाते हैं, इनमें १९-२० नामक दो अनुपलब्ध लभों को जोड दें ।

२ - मज्झिमखंड की पांडुलिपि की जेरोक्स प्रति इन पंक्तियों के लेखक को लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद के सौजन्य से देखने को मिली । इस प्रति को वह अध्ययनार्थ मैं कील विश्वविद्यालय (पश्चिम जर्मनी) ले गया था । यह चार खण्डों में ७१ लभों में विभक्त है । प्रथम भाग में १-१३७ पृष्ठ है, जिनमें १-१२९ पृष्ठों में प्रभावतीलंभ आता है, दूसरे खंड में (पृष्ठ ८६-२७६) २-४४ लभ, तीसरे खड के प्रथम भाग में (१-१३२) ४५-५७ लभ और दूसरे भाग में (१३१-२९०) में ५७-७१ लभ है । अत में (पृ २९०-३००) नायक वसुदेव और नायिका सोमश्री का मिलाप होता है ।

३ - देखिए, मज्झिमखंड, प्रभावतीलभ, व वसुदेवहिंडि, पृ ९८-१२२ के फुटनोट, पृ १३३-४० ।

बड़े ठाठ से स्वागत किया जाता है । जैसे कहा जा चुका है, ध्यान देने की बात है की मज्झिमखंड के आख्यान का वसुदेवहिंडि, हरिवंशपुराण और त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित की अपेक्षा कितने ही अशों मे कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी के कथानक से अधिक सादृश्य है । वसुदेवहिंडि और मज्झिमखंड, जो एक-दूसरे के पूरक है, गुणाढ्य की अनुपलब्ध बृहत्कथा के जैन रूपान्तर जान पडते है । जैन कथा साहित्य के क्षेत्र में दोनों ही रचनाएं महत्वपूर्ण है । इसके अतिरिक्त, दोनो ही रचनाएं प्राकृत गद्य में हैं (जबकि बृहत्कथा श्लोकसंग्रह, कथा-सरित्सागर और बृहत्कथा-मंजरी, तीनों संस्कृत पद्य मे है), अतएव ये दोनो रचनाये पैशाची प्राकृत गद्य मे रचित बृहत्कथा के अधिक निकटवर्ती कही जा सकती है । सारांश यह है कि लोकसंग्राहक वृत्ति को प्रमुख स्वीकार करने वाले जैन विद्वान् अभिनव कथा-कहानी की खोज में रहते और जहां कही उन्हे ऐसी कोई वस्तु मिलती, उसे अपनाने मे वे सकोच न करते । 'परौ अपावन ठौर पर कंचन तजत न कोय' की उक्ति यहां चरितार्थ होती है ।

वेताल-पंचविंशतिका - सिंहासन-द्वात्रिंशिका - शुक-सप्तति - भरट-द्वात्रिंशिका

पंचतंत्र की भांति उक्त रचनाएं भी विश्व कथा-साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।

(४) वेताल पंचविंशतिका मे वेताल[1] संबंधी पच्चीस कहानियां है । कहते है कि यह रचना इतनी लोकप्रिय हुई कि इसका मूल रूप ही नष्ट हो गया । आगे चलकर

---

१ - वसुदेवहिंडि (१७८, २५-१७९, १०) मे दीपमणि के प्रकाश की भांति जाज्वल्यमान भीषण रूपधारी वेताल का उल्लेख है । वेताल दो प्रकार के बनाये गये है, शीत और उष्ण । उष्ण वेताल विनाश की इच्छा से शत्रु का अपहरण करते है जब कि शीत वेताल शत्रु का अपहरण करके उसे वापस ले आते है । वेतालविद्या के प्रयोग द्वारा जीवित शरीर को मृत जैसा दिखाया जा सकता था (१८०, १६-१७) ।

२ - एच उले (H. Uhle), शिवदास, वेताल-पंचविंशतिका, लाइपिसग, १९१४ । इस कथा-संग्रह की पद्यबद्ध रचना के लिए देखिए, क्षेमेन्द्र, बृहत्कथामंजरी, ९, २, १९-१२२१; सोमदेव, कथासरित्सागर, ७५-९९; मुहम्मदशाह रंगील (१७२०-१७४७) के राज्य में ब्रजभाषा में अनूदित, ब्रजभाषा से हिन्दी में अनुवाद, १८०५; जॉन प्लाट्स द्वारा बैताल-पच्चीसी से हिन्दी में अनुवाद, लंदन, १८७१ ।

इसके संस्करण तैयार किये गये ।[1] इन कहानियों में सम्मोहन और मंत्र-तंत्र का भाग ही अधिक है, धर्म और नीति का कम । भारतीय कथा-साहित्य और विश्व-साहित्य के इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से ये कथाएं महत्त्वपूर्ण हैं । ये कहानियां इतनी लोकप्रिय हुईं कि केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं, भारत के बाहर विदेशी साहित्य में भी उन्हें स्थान मिला । जैन विद्वानों ने भी वेताल-पंचविंशतिका की कहानियों को अपनी रचनाओं में समाविष्ट किया । जैन विद्वान् सिंहप्रमोद (१५४५ ई.) को वेताल पंचविंशतिका का लेखक कहा गया है ।[1] आवश्यक चूर्णी (२, पृ. ५८) की एक कहानी पढ़िये :

किसी कन्या की तीन[2] स्थानों से मंगनी आई । एक जगह की मगनी उसकी माता ने, दूसरी जगह की उसके भाई ने और तीसरी जगह की मंगनी उसके पिता ने ली । विवाह की तिथि निश्चित हो गयी । तीनों स्थानों से बारात आ पहुंची । दुर्भाग्यवश जिस रात को भांवर पड़ने वाली थी, उस रात को कन्या को सांप ने डस लिया । वह मर गई ।

कन्या के तीनों वरों मे से एक तो कन्या के साथ ही चिता मे जलकर मर गया, दूसरे ने अनशन आरंभ कर दिया, तीसरे ने देवाराधना कर संजीवन मंत्र की प्राप्ति की । इस मत्र के प्रयोग द्वारा उसने उस कन्या और उसके वर को पुनरुज्जीवित कर दिया ।

अब तीनों वर उपस्थित होकर कन्या को मांगने लगे । यहा (जैन कहानी मे) राजा की पटरानी कनकमंजरी राजा से प्रश्न करती है, "बताइए, स्वामिन्, तीनों वरों मे से कौनसा वर कन्या पाने का हकदार है ?"

---

१ - एच. डी. वेलेणकर, जिनरत्नकोश, ३६५ । वेतालपंचविंशतिका में प्राकृत की २३ गाथाएं हैं । इस कथा-संग्रह और इसके जैन संस्करण में समान रूप से पाई जाने वाली मूर्तियों की अनुक्रमणिका के लिए देखिए, हर्टल, वी. एस. जी. डब्ल्यू (Berichte Uher verhandlungen der konigal Sachsischen gesellschaft der wrissen shaften zu Leipzig Philol Listor Klasse), १९०२, पृ १२३; विंटरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग १, पृ ४०४ नोट ।

२ - कहीं चार वरों का उल्लेख है । देखिए, ब्लूमफील्ड, एस. द लाइफ एंड स्टोरीज ऑफ द जैन सेविअर पार्श्वनाथ, ६९१-७१ र. १२९ तथा नोट, तथा वेताल पंचविंशतिका, कहानी, ५, ६ और ९; एच मार्कर, पोकटेल्स ऑफ सॉल्सेट १, ३७८ में भी यह कहानी आती है ।

जब बहुत देर तक राजा कोई उत्तर न दे सका तो चतुर पटरानी ने बताया, "देखिए महाराज, जिस वर ने कन्या को जिलाया, वह उसका पिता है; जो कन्या के साथ जीवित हुआ वह उसका भाई है; अब बाकी रहा तीसरा वर, जिसने अनशन किया था, कन्या पाने का हकदार वही है ।"[१]

(५) सिंहासन-द्वात्रिंशतिका (सिंहासन-द्वात्रिंशति-कथा)[२] में सिंहासन संबंधी ३२ कहानियां हैं । इसे विक्रमचरित भी कहा जाता है । वेताल पंचविंशतिका की भांति ये कहानियां भी बहुत लोकप्रिय हुई है । इनके अनेक संस्करण उपलब्ध हैं । यह रचना भी अपने मौलिक रूप में नही मिलती । जैन विद्वानो ने इन कहानियो का पर्याप्त लाभ उठाया है । जैन मुनि क्षेमंकरगणि[३] ने इन्हें परिवर्धित किया और वर्तमान में यही संस्करण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । संभवत: धार के राजा भोज के राज्य मे, उनके सन्मान मे इस ग्रंथ की रचना हुई थी । ईसवी सन् की ११ वी शताब्दी के पूर्व

---

१ - विश्वकथा साहित्य की दृष्टि से इस पहेली को महत्वपूर्ण माना गया है । कारकल जैन मठ में भेताल-पचविंशति की कन्नड पाडुलिपि मौजूद है, देखिए, कन्नडप्रातीय ताडपत्रीय ग्रंथसूची, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९४८ । आवश्यक चूर्णी की यह कहानी *वेताल-पचविंशति* की निम्नलिखित कहानी (५) पर आधारित है :
हरिवश मत्री की कन्या प्रण करती है कि वह किसी ऐसे पुरुष से विवाह करेगी जो वीरता, विद्या अथवा तांत्रिक शक्ति में सबसे बढ़कर होगा । कन्या का पिता वर की तलाश के लिए प्रस्थान करता है । वह एक ब्राह्मण की खोज निकालता है जो तंत्रविद्या में कुशल है । कन्या का भाई किसी अन्य विद्वान् ब्राह्मण को अपनी बहन के विवाह के लिए वचन देता है । कन्या की माता अपनी बेटी के लिए धनुर्विद्या में निपुण योद्धा को पसंद करती है ।
विवाह की तिथि निश्चित हो जाती है । उसी दिन कोई राक्षस कन्या का अपहरण कर लेता है ।
विद्वान् ब्राह्मण कन्या के रहने के स्थान का पता लगाता है । तांत्रिक अपना वायुयान लेकर वहा पहुचता है । योद्धा राक्षस की हत्या कर कन्या को वापिस लाता है ।
वेताल प्रश्न करता है कि तीनों उम्मीदवारों में से कौनसा उम्मीदवार कन्या पाने का हकदार है ।
राजा उत्तर देता है कि योद्धा कन्या को राक्षस के चंगुल में से छुड़ाकर लाया है, उसी को कन्या मिलनी चाहिए ।

२ - कुछ पाडुलिपियों में सिंहासनद्वात्रिंश-पुत्तलिका-वार्ता अथवा पुत्रिका-वार्ता नाम भी मिलता है । कारकल (दक्षिण कनारा) के जैन भडार में ग्रतिस-पुत्तलिका-कथा की पाडुलिपि मौजूद है, देखिए, कन्नड-प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रंथ सूची, १९४८ ।

३ - अन्य जैन लेखकों में समयसुन्दर और सिद्धसेन दिवाकर (सुप्रसिद्ध सिद्धसेन दिवाकर से भिन्न) के नामों का उल्लेख है, एच. वेलेणकर, जिनरत्नकोश, ४३६ ।

की यह रचना नही जान पड़ती । बादशाह अकबर के आदेश से १५७४ ईसवी के लगभग इसका फारसी मे अनुवाद किया गया । स्यामी, मंगोली आदि विदेशी भाषाओं में भी इसके अनुवाद हुए है ।

सिंहासन-द्वात्रिंशिका की भूमिका में पार्वती शिवजी महाराज से कोई मनोरंजक कथा सुनाने का अनुरोध करती हैं । उनके अनुरोध को स्वीकार कर शिवजी उन्हें विक्रमचरित सुनाते है :

उज्जयिनी में राजा भर्तृहरि राज्य करते थे । एक दिन किसी ब्राह्मण ने उन्हे कोई चमत्कारी फल भेट किया । राजा ने उसे अपनी रानी को दे दिया, रानी ने घुड़साल के निरीक्षक अपने प्रेमी को और उसने उसे अपनी प्रेमिका वेश्या को । वेश्या ने उसे अत्यन्त आदरपूर्वक राजा को उपहार मे भेट किया । यह देखकर राजा के मन मे वैराग्य हो आया । अपने भाई विक्रमादित्य को अपना राजपाट सौंपकर उन्होंने संन्यास ले लिया ।[1]

राजा विक्रमादित्य अपनी वीरता एवं उदारता के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है । एक दिन वे स्वर्ग के इन्द्र से भेट करने पहुचे । इन्द्र ने उन्हे चमत्कारपूर्ण सिहासन भेट किया जिसमें एक से एक सुन्दर स्त्रियो की ३२ पुतलियां जड़ी हुई थी । राजा विक्रमादित्य सिंहासन को उज्जयिनी लिवा लाया । कालान्तर मे राजा विक्रमादित्य के राजा शालिवाहन के साथ युद्ध करते समय कालगत हो जाने पर, दैवाज्ञा का आदेश पाकर सिहासन को जमीन मे गाड़ दिया गया, कोई राजा इसपर आसीन होने के योग्य न समझा गया । अनेक वर्षो के पश्चात् जब राजा भोज गद्दी पर बैठा तो उसे जमीन मे गाडकर रखे हुए सिंहासन का पता लगा । राजा भोज ने सिंहासन को वहा से मगवा लिया और इसमे एक हजार खम्भे लगवाकर राजभवन मे रखवा दिया ।

---

१ - देखिए भर्तृहरिशतक का सुप्रसिद्ध श्लोक :

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

किन्तु जब राजा भोज इसपर बैठने को हुए तो सिंहासन में जड़ित एक पुतली ने मानव की आवाज मे कहा : "विचारो की उत्तमता, वीरता, उदारता तथा अन्य परिष्कृत गुणों मे तुम राजा विक्रमादित्य से मुकाबला नही कर सकते, अतएव सिंहासन पर बैठने के अधिकारी तुम नही हो ।" इसपर राजा भोज के अनुरोध पर सिंहासन-जटित पुतली ने राजा विक्रमादित्य की प्रशंसा में एक कहानी सुनाई ।

राजा भोज ने पुन: सिंहासन पर आसीन होने की चेष्टा की । अब की बार सिंहासन-जटित दूसरी पुतली ने पहली पुतली की बात दुहराई । राजा भोज के अनुरोध पर पुतली ने विक्रमादित्य की प्रशंसा में दूसरी कहानी सुनाई । यह क्रम तब तक चलता रहा जब तक कि बत्तीस कहानियां पूरी न हो गयी । अंत में पता चला कि वे पुतलियां स्वर्ग के देवों की देवांगनाएं थीं जिन्हे शाप देकर पत्थर की मूर्ति बनाकर छोड़ दिया गया था । राजा भोज से साक्षात्कार होने पर वे शाप से मुक्त होकर स्वर्ग को लौट गयी ।

सिंहासन-द्वात्रिंशिका अपने मौलिक रूप मे मुख्यतया नीतिशास्त्र संबंधी रचना थी, जैन नीति या धर्म से उसका संबंध नही था । राजा विक्रमादित्य अपनी इच्छापूर्ति के लिए देवी की उपासना के हेतु देवी के मंदिर में प्रवेश करता है; देवी को प्रसन्न करने के लिए अपना सिर काटकर अर्पित करना चाहता है । किन्तु देवी उसे ऐसा करने से रोक देती है; राजा की इच्छा पूरी हो जाती है । वस्तुत: इस प्रकार की घटनाओं का तंत्र मे ही अधिक संबंध है, जैन मान्यताओं से नही ।[1] इन कहानियो मे वीरता पर ही अधिक जोर दिया है, विचारो की उदारता पर नही ।

सिंहासन-द्वात्रिंशिका की ३२ वी कहानी पढ़िए :

अवन्ती नगरी में राजा विक्रमादित्य का राज्य था । प्रजा खुशहाल थी । जो कुछ माल बाजार मे बिक्री के लिए लाया जाता, यदि संध्या तक उसकी बिक्री न हो पाती तो राजा स्वयं उसे खरीद लेता ।

एक बार की बात है, कोई आदमी दरिद्रता का लोहे का पुतला बनाकर बाजार में लाया । पुतले का दाम १००० दीनारें आंका गया । जाहिर है कि कोई भी

---

१ - देखिए, विन्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग १, पृ ४१०-११

ग्राहक दरिद्रता के पुतले को क्यों खरीदेगा ? खैर, संध्या के समय राज-कर्मचारियों ने बाजार की गश्त लगाई और पुतले को राजा के लिए खरीद कर ले गये । पुतले को राजा के कोषागार मे रख दिया गया ।

वहां जब पुतले पर लक्ष्मी की नजर पडी तो राजा के दरबार मे उपस्थित हो उसने शिकायत की, "महाराज, मैं अब यहा नही रह सकती, आपके कोषागार मे दारिद्र्य का पदार्पण हो गया है ।" राजा ने उससे ठहरने के लिए बहुत अनुनय-विनय की, पर उसने उत्तर दिया, "जहा दारिद्र्य है वहां किसी भी हालत मे मेरा रहना सभव नही ।" किन्तु राजा अपने किये हुए वादे से नहीं मुकर सकता था, अतएव उसे लक्ष्मी को चले जाने की अनुमति देनी पडी ।

शीघ्र ही विवेक उपस्थित हुआ । उसने निवेदन किया, "महाराज, जहां दरिद्रता का वास है वहां हम लोग नही रह सकते । लक्ष्मी पहले ही प्रस्थान कर चुकी है, मुझे भी चले जाना चाहिए ।" राजा ने उसे भी चले जाने की अनुमति दे दी ।

कुछ देर बाद साहस का आगमन हुआ । उसने निवेदन किया, राजन्, जहां दरिद्रता रहती है वहां हम लोगो के लिए रहना असंभव है । लक्ष्मी और विवेक पहले ही जा चुके है । मै आपसे विदा लेने आया हू । आपकी संगति का बहुत दिनो तक उपभोग किया, अब कृपाकर जाने की आज्ञा दीजिए ।"

यह सुनकर राजा कांप उठा । उसके मन मे विचार आया, "यदि साहस ही छोड़कर चला जाये तो फिर रहेगा ही क्या ?

प्रयातु लक्ष्मीश्चपलस्वभावा
गुणा विवेकप्रमुखाः प्रयातु ।
प्राणाश्च गच्छन्तु कृतप्रयाणा
मा यातु सत्त्व तु नृणां कदाचित् ॥

— लक्ष्मी भले ही चली जाये, वह चपल स्वभाव वाली है, विवेक आदि गुण भी प्रस्थान कर जाये, कदाचित् मनुष्य प्राणो से भी वंचित हो जाये, किन्तु मनुष्य को छोड़कर साहस कभी न जाये ।

साहस को लक्ष्य करके राजा ने कहा, "हे साहस, भले ही सबके सब चले जायें, कम-से-कम तुम तो न जाओ ।" साहस ने उत्तर दिया, "राजन्, जहां दरिद्रता का वास है, वहां मेरा रहना नहीं हो सकता ।"

किन्तु राजा ने कहा, "तो अब दरिद्रता मुझे अपने सिर से वंचित करना चाहती है । तुम्हारे बिना मेरे लिए जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता ।"

यह सोचकर राजाने अपने सिर को धड़ से अलग करना चाहा कि साहसने उसे ऐसा करने से रोक दिया ।

साहस ने वहीं रहने का निश्चय किया; लक्ष्मी और विवेक, जो राजा को छोड़कर चले गये थे, वापिस लौट आये ।

कहना न होगा कि पंचतंत्र, बृहत्कथा, वेताल पंचविंशति आदि लोकरंजक लोककथाओं को आत्मसात् करने में जैन कथाकारों ने कभी संकोच नहीं किया । परिणाम यह हुआ कि पूर्णभद्रसूरि कृत पंचतंत्र के पंचाख्यान नामक जैन संस्करण की भांति, क्षेमंकर गणि कृत सिंहासन-द्वात्रिंशिका का जैन संस्करण भी सर्वमान्य बन गया । यही बात विक्रमचरित के संबंध में भी हुई । जैन लेखकों ने न केवल राजा विक्रमादित्य की प्रशंसा में विक्रमचरितों का निर्माण किया, बल्कि उन्होंने राजा को जैनधर्मानुयायी बनाकर उसकी दानशीलता का खूब ही गुणगान किया । ईसवी सन् की १२-१३ वीं शताब्दी के बीच विक्रमादित्य को लेकर अनेक जैन कथाग्रंथों का निर्माण हुआ जिनमें उसे एक जैन नरेश घोषित कर दिया गया ।[1] ईसवी सन् की १५ वीं शताब्दी में देवमूर्ति उपाध्याय ने संस्कृत में १४ सर्गों में विक्रमचरित[2] की रचना की । अनेक ग्रंथों के रचयिता शुभशील गणि ने भी विक्रमचरित लिखा जिसमें विक्रम संबंधी लोक-प्रचलित कथाओं का संग्रह किया गया । विक्रमचरित के अन्य लेखकों में पंडित सोमसूरि, राजमेरू और श्रुतसागर के नाम लिये जा सकते हैं ।[3]

१- देखिए, एच डी. वेलेणकर, विक्रमादित्य इन जैन ट्रेडीशन, विक्रम वाल्यूम, सिंधिया प्राच्य परिषद, उज्जैन, १९४८, पृ ६३७-७० ।

२- वेलेणकर, जिनरत्नकथाकोश, ३४९ ।

३- जैन साहित्य का बृहद् इतिहास ६, पृ ३७६-७८

विक्रमादित्य संबंधी जैन कथाओ मे पंच-दण्ड-च्छत्र-कथा का उल्लेख कर देना भी अनावश्यक न होगा । इस अद्‌भुत कथा मे जादू-टोने और इन्द्रजाल की कहानियां है जिनमें विक्रमादित्य को एक शक्तिशाली जादूगर के रूप में चित्रित किया गया है । कथा के आरभ और अतिम श्लोक मे जैन नीति वाक्य का समावेश किया गया है । कथा की भाषा शुद्ध संस्कृत न होकर मारवाडी बोली से मिलती-जुलती मिश्रित भाषा है । कथानक निम्न प्रकार है :

राजा विक्रम उज्जैनी के बाजार मे होकर जा रहा था । राज कर्मचारियो ने दामिनी नाम की जादूगरनी की दासी को पीट दिया । इसपर नाराज होकर जादूगरनी ने अपनी जादू की छडी से भूमि पर तीन रेखाए खीची । ये रेखाए तीन दीवालो के रूप मे बदल गयी । ये दीवाले इतनी मजबूत थी कि राजा की सेना भी इन्हे नहीं गिरा सकती थी । मजबूर होकर राजा को दूसरे मार्ग से महल मे प्रवेश करना पडा । राजा ने जादूगरनी को बुलाया । उसने कहा कि राजा इन दीवालो को तभी हटा सकता है जबकि वह उसके पांच आदेशो को पूरा कर उससे जादू की पाच छडिया (दण्ड) प्राप्त कर ले । राजा ने जादूगरनी की बात मान ली । अत मे विक्रम राजा ने जादू की पाच छड़ियों को प्राप्त कर उनकी सहायता से दीवालो को तोड दिया । यह जानकर स्वर्ग के इन्द्र ने प्रसन्न होकर राजा के लिए एक सिंहासन भेजा जो पचदण्ड से जटित था उन पंचदण्डो पर एक सुंदर छत्र शोभायमान हो रहा था । राजा विक्रमादित्य ने सिंहासन पर आसीन होकर उसे पवित्र किया ।

इस कथा पर प्रथम स्वतत्र रचना पच-दण्डात्मक-विक्रमचरित शीर्षक के अन्तर्गत ईसवी सन् की १३ वी शताब्दी मे लिखी गयी जिसके कर्ता का नाम अज्ञात है । अन्य रचनाए भी इस कथा पर जैन विद्वानों ने लिखी है ।[१]

(६) भारतीय कथा साहित्य मे वेताल-पंचविंशतिका और सिंहासन-द्वात्रिंशिका की भांति शुक-सप्तति भी अत्यन्त लोकप्रिय रचना रही है । इसमे ७० कहानिया है जो शुक के द्वारा कही गयी है । यहां भी प्रक्षिप्त सामग्री कम नहीं है । शुक-सप्तति

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, ६, पृ ३७८-७९

की अनेक पांडुलिपियां मिली हैं और अनेक इसके संस्करण हैं जिनमें पारस्परिक भिन्नता देखने में आती है । मौलिक कृति नष्ट हो गयी है और उपलब्ध संस्करण पूर्ववर्ती संस्करणों से तैयार किया गया है । जैन विद्वान् रत्नसुंदर सूरि (१५८१ ई.) ने शुक-सप्ततिका अथवा शुक-द्वासप्ततिका की रचना की है ।[१] भारतीय और विदेशी भाषाओं में इस लोकप्रिय रचना के अनेक अनुवाद हुए हैं ।[२]

शुक-सप्तति की कहानी का ढांचा देखिए :-

हरिदास सेठ का मनोविनोद नामक पुत्र, जो कुमार्गगामी था, अपने पिता की सीख नहीं मानता था । सेठजी के मित्र त्रिविक्रम नामक ब्राह्मण को जब इस बात का पता लगा तो वह नीतिशास्त्र में निपुण शुक और सारिका को लेकर सेठजी के पास पहुंचा । ब्राह्मण ने सेठजी से शुक और सारिका को पुत्र की भांति पालने का अनुरोध किया । समय बीतने पर शुक का उपदेश सुनकर सेठजी का पुत्र पिता का आज्ञाकारी बन गया । सेठजी धनोपार्जन के लिए देशांतरको रवाना हो गये । सेठजी की अनुपस्थिति में उनकी पत्नी प्रभावती को पर-पुरुष की अभिलाषा हुई । ज्यों ही वह पर-पुरुष के साथ रमण करने चली, सारिका ने उसे रोक दिया । प्रभावती ने गुस्से से उसका गला मरोड़ उसे मार डालना चाहा, लेकिन वह सफल नहीं हुई । शुक सारिका से अधिक चतुर था । उसने प्रभावती को एक से एक बढ़कर ७० मनोरंजक कहानियां सुनाकर उसके शील की रक्षा की ।

अन्य लौकिक कथा-कहानियों की भांति जैन कथाकारों ने शुक-सप्तति की लोकप्रिय कथाओं को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया । दशवैकालिक चूर्णी (पृ. ८९-९१) में नूपुरपंडिता नाम की वणिक्-वधू की कहानी पढ़िए :

किसी वणिक् वधू का वृद्ध ससुर रात्रि के पिछले पहर में लघुशंका के लिए उठा तो उसने देखा कि उसकी पतोहू अपने पति को छोड़कर किसी पर-पुरुष के पास

---

१ - वेलेणकर, जिनरत्नकोश, पृ. ३८९.

२ - रिचर्ड स्मिथ द्वारा सम्पादित, कील, १८९०; लाइब्जिग, १८९७; अन्य जर्मन संस्करणों के लिए देखिए, विन्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग १, पृ. ४१५ नोट, ४१९ नोट ।

जाकर सो गई है । उसकी आंखों-देखी बात कहीं झूठ न साबित हो जाये, इसलिए ससुर ने अपनी पतोहू के पैर मे से एक नूपुर निकाल लिया ।

सुबह होने पर नूपुरपंडिता अपने पति के पास पहुंच बड़े आश्चर्य, विषाद और उपहासपूर्वक कहने लगी, "देखिए, प्राणप्रिय, आपके कुल मे यह कैसा रिवाज है कि ससुर रात को अपने पति के साथ शयन करती हुई पुत्रवधू के पैर का नूपुर निकाल लेता है !"

कुछ देर बाद बहू का ससुर आया । उसने अपने पुत्र को एकांत मे ले जाकर, बहू के पांव का नूपुर दिखाते हुए कहा, "देख, तेरी बहू अब बिगड़ चली है । वह किसी पर-पुरुष से प्रेम करती है ।"

लेकिन बहू ने अपने ससुर की बात मानने से इन्कार कर दिया । आखिर बहू को यक्षमंदिर मे भेजकर उसकी परीक्षा कराने का फैसला किया गया ।

नूपुरपंडिता स्नान कर वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो यक्षमंदिर में पहुंची ।

उधर उसका प्रेमी भी खबर पाकर, जैसे किसी ग्रह से पीड़ित हो, हाथ मे एक टूटा डंडा लिये, फटे-कटे वस्त्र पहने, शरीर मे भभूत रमाये, पुरुषो का अभिवादन करता और महिलाओं का आलिंगन करता हुआ, वहां पहुंचा ।

पुरुष ने नूपुरपंडिता के गले मे हाथ डालकर आलिंगन किया । नुपूरपंडिता को पर-पुरुष का स्पर्श हो जाने के कारण शुद्धि के लिए स्नान करना पड़ा ।

यक्षरूपधारी अपने प्रेमी के समक्ष उपस्थित हो, नुपूरपंडिता ने घोषणा की, "हे यक्ष, यदि मैंने अपने विवाहित पति के सिवाय अन्य किसी पुरुष का स्पर्श तक भी किया हो तो तू साक्षी है ।"

यक्ष-मंदिर का नियम था कि यदि कोई अपराधी होता तो वह वहीं रह जाता और निर्दोषी बाहर निकल जाता ।

नूपुरपंडिता की उक्त घोषणा सुनकर यक्ष भी क्षणभर के लिए सोच मे पड़ गया, और इस बीच वह झट से मंदिर के बाहर आ गयी ।

चारों ओर साधुवाद की ध्वनि सुनाई पडने लगी । नूपुरपंडिता के सतीत्व की परीक्षा हो गई ![1]

शुक-सप्तति की एक अन्य लोकप्रिय कथा देखिए :

मूलदेव और कंडरीक दोनों कहीं जा रहे थे । मार्ग में उन्हें एक बैलगाड़ी दिखाई दी । गाड़ी में एक तरुण अपनी स्त्री के साथ सवार था । युवती को देखकर कंडरीक ने मूलदेव को इशारा किया । मूलदेव कंडरीक को वृक्षों के एक झुरमुट में छिपाकर स्वयं बैलगाड़ी के पास आकर खड़ा हो गया ।

मूलदेव ने तरुण से प्रार्थना की, "देखिए, प्रसव वेदना से पीडित मेरी पत्नी वृक्षों के झुरमुट में लेटी हुई है । यदि थोड़ी मदद के लिए अपनी पत्नी को उसके पास भेज सकें तो बड़ी कृपा हो ।"

स्वीकृति मिलने पर तरुण की पत्नी वृक्षों के झुरमुट में पहुंच कंडरीक से जा मिली ।

वहां से वापिस आने पर मूलदेव को उसने बधाई दी कि उसके बेटा हुआ है । तत्पश्चात् मूलदेव की पगड़ी उछाल अपने पति को लक्ष्य करके वह बोली :

खडी गड्डी वडल्ल तुहुं, बेटा जाया ताह
रण्णि वि हुति मिलावडा मित्त सहाया जांह ।[2]

---

१. दशवैकालिक चूर्णी, ८९-९१; जयसिंहसूरि, धर्मोपदेशमाला-विवरण, ४९-५२; हेमचन्द्र, परिशिष्टपर्व, २.८४४६-६४०; हिन्दी रूपान्तर, जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत जैन कथा-साहित्य, पृ. ९१-९२; रमणी के रूप, पृ. ११९-२५, अंग्रेजी रूपान्तर, द गिफ्ट ऑफ लव ऐण्ड अदर एंशिएण्ट इंडियन टेल्स अबाउट वीमन, पासिंग द टैस्ट ५०-५५; तथा प्राकृत नैरेटिव लिटरेचर - ओरिजिन ऐण्ड ग्रोथ, ५८ और नोट । शुकसप्तति (१५) में यह कहानी आती है । 'शुचिता' (चैस्टिटी) अथवा 'सत्य का कार्य' (एक्ट ऑफ ट्रुथ) - यह एक कथानक रूढ़ि है जो विश्व साहित्य में पायी जाती है । इसका अभिप्राय है कि ऐसी कोई वस्तु नहीं जो सत्य द्वारा प्राप्त न की जा सके । सत्य के बल से मनुष्य समुद्र पार कर सकता है और अग्नि प्रभावहीन हो जाती है । यह मां के सतीत्व का ही प्रभाव है कि उसके पादस्पर्श से गिरा हुआ हाथी उठ खड़ा होता है (एन. एम. पेंजर, द ओशन ऑफ स्टोरी, १ इन्ट्रोडक्शन, चैस्टिटी इन्डेक्स मोटिफ, १६५-६८), कैदी कारागृह से मुक्त हो जाता है (मालविका नोव, स्टडीज इन द डिक्शनरी ऑफ फोकलोर, जिल्द १, ८) । मिलिन्दपञ्हो (१२१ आदि) में बिन्दुमती गणिका के सत्य के प्रभाव से गंगा-प्रवाह के उल्टे बहने लगने का उल्लेख है, देखिए प्राकृत नैरेटिव लिटरेचर, पृ. ४८-५१ ।

२. हेमविजय कृत कथारत्नाकर (मित्रविषये कथा १७) में भी यह कहानी मिलती है । तुलना कीजिए, निम्नलिखित दोहे के साथ :

बलिहारी उस मित्र की जिसके मित्र बहुत्त । बेटा हुआ न बेटड़ी हो के बैल बहुत्त ।

- तुम्हारी गाडी और बैल खड़े है । उसके बेटा हुआ है । जिसके सहायक होते है, उसका अरण्य मे भी मिलाप हो जाता है ।[1]

शुक-सप्तति के अतिरिक्त शुक के द्वारा कही हुई कितनी ही अन्य मनोरंजक कथा-कहानिया आवश्यक-चूर्णी, विनोदकथा-सग्रह (कथाकोश), कथाकोशप्रकरण, पाइयकहा-सग्रह, पचाख्यान-वार्तिक, करकण्डुचरिउ आदि जैन-ग्रथो मे यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं जिनका क्रमबद्ध अध्ययन करने की आवश्यकता है ।[2]

(७) भरटद्वात्रिंशिका मे भरटको (भिक्षा मागने वाले शैव साधु) की ३२ कहानिया हैं । इस मुग्धकथा का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है जिसमे मुग्धकथाओ के बहाने कट्टरपथियो के धर्म का उपहास किया गया है । हर्टल के मतानुसार, इस कथा का लेखक गुजरात-निवासी कोई जैन विद्वान् होना चाहिए । उनका अनुमान है कि यह रचना ४९२ ई के पूर्व मौजूद थी ।[3] इन कहानियो मे लपट, वचक, धूर्त, मूर्ख और झूठे-मक्कार पुरुषो का यथार्थवादी सरस चित्रण देखने मे आता है ।

निम्नलिखित कहानी (८) मे ग्राम-कवियो का उपहास किया गया है

किसी ग्राम-कवि को बहुत याचना करने पर भी कुछ भी प्राप्त न हुआ । किन्तु भरटक (शैव-उपासक साधु) के शिष्य खा-पीकर खूब मौज करते, वे न कभी पढ़ने-लिखने का कष्ट उठाते और न कभी कोई काव्य रचना ही करते । इसके विपरीत ग्राम-कवि प्रतिदिन नूतन काव्य की रचना करता, फिर भी कर्म की परवशता के कारण उसे भूखे ही रहना पडता । देखिए·

भरटक तव चट्टा लवपुट्ठा समुद्दा
न पटति न गुणंते नेव कव्व कुणते ।
वयमपि न पठाभो किन्तु कव्व कुणामो
तदपि भुख मरामो कर्मणा कोऽत्र दोष . ॥

---

१ - उपदेशपद और वर्धमान सूरि कृत टीका, गाथा ९३, पृ ६४, आवश्यक चूर्णी पृ ५५१ व आ ।
२ - देखिए, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ ३८-५२
३ - ज. हर्टल, लाइपिजग, १९२१

सीता, द्रौपदी, दमयन्ती आदि की कथाओं का जैन रूपान्तर

अन्य सामान्य लौकिक कथाओ में सीता, द्रौपदी, दवदन्ती (दमयन्ती) आदि की कथाओं का नामोल्लेख किया जा सकता है जिन्हें जैन विद्वानो ने अपने ढांचे में ढालकर भारतीय कथा-साहित्य को पुष्पित और पल्लवित किया । रामायण के संबंध मे दिगंबर-श्वेतांबर मान्यताओं में ही नहीं, स्वयं दिगंबरों-दिगंबरों तथा श्वेतांबरो-श्वेतांबरो की मान्यताओ मे भी विभिन्नताएं पाई जाती हैं । वसुदेवहिंडि और पउमचरिय दोनों ही श्वेतांबर रचनाएं हैं किन्तु दोनों में कतिपय बातों को लेकर भिन्नताएं दृष्टिगोचर होती हैं । वसुदेवहिंडि में सीता को रावण की पुत्री कहा गया है । यहां बताया है कि केकयी शयनोपचार (कामकला) में निपुण थी, इसलिए दशरथ ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया था । वाल्मीकि रामायण मे भी इस प्रसंग की चर्चा की गयी है । हरिभद्र के उपदेशपद में सीता को लेकर निम्न प्रसंग का उल्लेख मिलता है जो अन्य जैन ग्रंथों में देखने में नहीं आया :

सीता के बहुत समय तक रावण के घर लंका मे रहने के कारण उस पर शीलभ्रष्टता का दोषारोपण किया गया । इस समय सीता की किसी सौत ने उससे अपने रूप-सौंदर्य के लिए संसार-भर मे प्रसिद्ध रावण का चित्र बनाने का अनुरोध किया ।[१] किन्तु सीता की दृष्टि केवल रावण के पैरों तक ही पहुंची थी, उससे आगे नही, इसलिए वह केवल रावण के पैरों का ही चित्र बना सकी । इस चित्र को सीता की सौत ने अपनी कुटिल बुद्धि से रामचन्द्र को दिखाते हुए कहा, "देखिए महाराज, अभी तक भी इसने रावण के मोह का परित्याग नहीं किया !" यह सुनकर रामचन्द्र सीता से बहुत असंतुष्ट हुए । ध्यान देने की बात है कि यह प्रसंग ब्रजभाषा के

१- भद्रेश्वर सूरि की कहावलि में भी इस प्रसंग का उल्लेख है । अयोध्या लौटने के बाद सीता जब गर्भवती हुई तो उसने दो पराक्रमी पुत्रों के जन्म लेने का स्वप्न देखा । स्वप्न की बात सुनकर सपत्नियों के मन में ईर्ष्या का भाव जागृत हुआ । उन्होंने किसी छल प्रयोग द्वारा राम के सामने सीता को बदनाम करने की इच्छा से उसे रावण का चित्र बनाने को कहा. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास ६. पृ ७२ ।

लोकगीतों मे भी प्रतिफलित हुआ है, अन्तर इतना ही है कि सौत का स्थान यहां ननद को मिलता है ।[2]

द्रौपदी के प्रसंग को लें । उसे पंचभर्तारी सिद्ध करने के लिए जैन एवं जैनेतर कथाकारों को एडी से चोटी तक का पसीना वहाना पड़ा है । श्वेतांवर संप्रदाय द्वारा मान्य नायाधम्मकहाओ (१६) में पंचभर्ताओं का समर्थन करने के लिए पूर्वजन्म के पांच ऐश्वर्यशाली राजाओं की कथा जोड़ी गयी है जो द्रौपदी के रूपसौंदर्य पर रीझकर उसे अपनी रानी बनाना चाहते थे । दिगंवर-मान्य जिनसेन की हरिवंशपुराण (४५.३६) मे एक विचित्र ही कल्पना देखने में आती है । यहां कहा गया है कि द्रौपदी ने जब अर्जुन के गले में वरमाला डाल दी तो वह माला हवा के झोके से तितर-वितर होकर वहां खड़े हुए पांडवो के शरीर पर गिरकर फैल गयी, अतएव द्रौपदी को पंचभर्तारी घोषित कर दिया गया, वस्तुत: पांच पांडवो के साथ उसका विधिवत् विवाह नही हुआ था ।

सती-साध्वी दवदन्ती (दमयन्ती) को लेकर भी जैन विद्वानो द्वारा अनेक आख्यान लिखे गये । सुप्रसिद्ध देवेन्द्रगणि ने अपने आख्यानमणिकोश के अन्तर्गत शील-माहात्म्य-वर्णन अधिकार मे, सोमप्रभ सूरि ने कुमारवाल-पडिवोह में, सोमतिलक सूरि ने शीलोपदेशमाला-वृत्ति में, जिनसागर सूरि ने कर्पूरप्रकर टीका मे और शुभशील गणि ने भरतेश्वर-वाहुवलि-वृत्ति मे दवयन्ती की कथा प्रस्तुत की । कुछ और भी कथाएं लिखी गई जो जैन भंडारो मे अप्रकाशित पड़ी है । कितने ही प्रसंग ऐसे आते थे कि जैन विद्वानों को अपने धर्म को समुन्नत रूप में प्रस्तुत करने के लिए लोक-प्रचलित आख्यानो में परिवर्तन-संशोधन करने पड़ते थे । सी. एच. टॉनी द्वारा अंग्रेजी मे अनूदित कथाकोश में नल और दवदन्ती का कथानक दिया

१- प्राकृत साहित्य का इतिहास, नया संस्करण, ४२७ और नोट ।

गया है । इस पर टिप्पणी करते हुए ग्रंथ की भूमिका में अनुवादक महोदय ने इसे लोक-साहित्य के क्षेत्र में जैन विद्वानों का विशिष्ट योगदान बताया है ।

जैन कथा-कहानियों का लोककथाओं पर प्रभाव

कहा जा चुका है कि किसी राष्ट्र की संस्कृतियां एक-दूसरे से प्रभावित होकर फलती - फूलती है, एक - दूसरे से अलग-थलग रहकर नहीं । जैन संस्कृति जो कि भारतीय संस्कृति का एक मूल्यवान अंग है, इसका अपवाद नहीं । कथा-कहानियों का स्थान तो इसलिए और भी महत्वपूर्ण है कि वे किसी धर्म या संस्कृति की पैतृक संपत्ति नहीं है । वस्तुत: कथा-कहानियां धर्म का परिवेश है । किसी धार्मिक या नैतिक सिद्धांत की व्याख्या करने के लिए उदाहरणों, दृष्टान्तों, उपमाओं अथवा कथाओं-कहानियों की आवश्यकता होती है । उदाहरण के लिए, 'अहिंसा परमो धर्म: यतो धर्मस्ततो जय.' कह देना मात्र पर्याप्त नहीं है । उसके विशद् स्पष्टीकरण के लिए अहिंसा व्रत और उसके अतिचारों से संबंधित कथा-कहानी का निर्देश करना होगा । मतलब यह कि जैसे जैनधर्म के पंडितों ने लौकिक कथा-कहानियों का आश्रय लेकर अपने धर्म का प्रचार व प्रसार किया, वैसे ही जैन कथा-कहानियाँ भी, विशेषकर मध्यकालीन भारतीय कथा-साहित्य को प्रभावित किये बिना न रहीं । ईसवी सन् १५ वीं शताब्दी के जैन आचार्य जिनहर्ष गणि कृत रयणसेहरि कथा को लें । यहां रत्नपुर के राजा रत्नशेखर और सिंहलद्वीप की राजकुमारी रत्नवती की मनोरंजक प्रेम-कहानी दी गयी है । राजा का मंत्री जोगिनी का रूप बनाकर राजकुमारी से मिलने सिंहलद्वीप जाता है जहां दोनों में योग संबंधी प्रश्नोत्तर होते है । ईसा की १६ वीं शताब्दी के सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' और जटमल के 'गोरा बादल की बात' पर इस रचना का प्रभाव स्पष्ट है । यहां तणा, तणउं, तणी, कोधी, माडइ आदि कितने ही मध्यकालीन जूनी गुजराती के शब्दों का प्रयोग मिलता है जिससे पता लगता है कि किस प्रकार गुजराती भाषा गढ़ी जा रही थी । वस्तुत, यदि रयणसेहरिकहा में से पर्व और तिथियों के माहात्म्य को

निकाल दिया जाय तो यह कहानी अपने शुद्ध लौकिक कहानी के रूप मे रह जाती है । इससे पता चलता है कि 'जैन कथाकार किस प्रकार लोक-प्रचलित कहानियो को अपनी धार्मिक कथाओं मे गुंफित कर उन्हे उपयोगी बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे । दूसरा उदाहरण णरविक्कमचरिय का लिया जा सकता है । यह कहानी ईसा की ११ वी शताब्दी के गुणचन्द्रसूरि कृत महावीरचरिय मे विस्तार से दी गयी है । नरसिंह राजा का पुत्र राजकुमार नरविक्रम अपनी पत्नी शीलवती और दो पुत्रो से बिछुड़कर संकटमय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होता है, और अंत मे उनसे उसका मिलाप हो जाता है । इस कथा ने गुजराती की चन्दन मलयगिरि नामक लोककथा को प्रभावित किया है जिसके विभिन्न गुजराती रूपान्तर देखने मे आते है ।[१]

इसके अतिरिक्त, जैन-ग्रंथो मे उल्लिखित अभयकुमार, श्रेणिक या नटपुत्र रोहक द्वारा कही हुई हाजिरजवाबी (बुद्धि चमत्कार) की अनेक कहानिया गुजरात-सौराष्ट्र मे अभय के नाम से, बिहार मे गोनू झा के नाम मे और उत्तर भारत मे बीरबल के नाम मे प्रसिद्ध है । ईसवी सन् की १४ वी शताब्दी के विद्वान् राजशेखर मलधारि कृत विनोदकथा-सग्रह (अपरनाम कथाकोश) मे ऐसी कितनी ही कथा-कहानियां मौजूद है जो बीरबल-अकबर के नाम से आज भी लोक मे प्रचलित है । अभी हाल मे इन पक्तियों के लेखक को राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर मे आयोजित एक जैन संगोष्ठी मे सम्मिलित होने का अवसर मिला । यहा समाज के कार्यकर्ता मूक सेवाभावी श्री कपूरचन्द जी पाटणी ने हाजिरजवाबी के एक-से-एक बढकर दिलतोड रोचक किस्से सुनाये, जिन्हे सुनकर हम लोटपोट हो गये । उस समय मेरा मन अकस्मात् ही राजस्थान की अतीतकालीन उस जीती-जागती समृद्ध संस्कृति की ओर जा पहुचा जो आज भी अपने विविध रूपो मे जीवन्त है । कथा-साहित्य के क्षेत्र मे इसे सर्वोपरि योगदान समझा जायेगा ।

१- देखिए, रमेश एन. शर्मा का 'जैन एण्ड नॉन-जैन वर्जन्स ऑफ द पापुलर टेल ऑफ चन्दन-मलयगिरि फ्रॉम प्राकृत एण्ड अदर अर्ली सोर्सेज' नामक लेख, महावीर जिनालय सुवर्ण महोत्सव ग्रथ, बम्बई ।

कथाकोशों का निर्माण

जैन कथा-साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है । इसका आरंभ भगवान् महावीर से प्रारंभ होता है जबसे उन्होंने अपनी धर्मकथाओं के माध्यम से निर्ग्रन्थ धर्म का प्रचार करना शुरू किया । तत्पश्चात् महावीर के गणधरो द्वारा भगवान् की वाणी को बारह अगो में निबद्ध किया गया । इस विशाल साहित्य पर टीका-टिप्पणियों की रचना की गयी । दिगंबर और श्वेतांबर दोनों संप्रदायों के कथाकारो ने अपने-अपने साहित्य को पुष्पित और पल्लवित किया । दिगंबरीय शौरसेनी साहित्य में भगवती आराधना, मूलाचार आदि जैसे प्राचीन साहित्य का निर्माण हुआ । यद्यपि भगवती आराधना के आचार-प्रधान ग्रथ होने से इसमे मुख्यतया सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप - इन चार आराधनाओं का विवेचन है, फिर भी यहां उन निर्ग्रंथ श्रमणो की कितनी ही कथाएं वर्णित है जिन्होंने असह्य घोर कष्टो का सामना करते हुए अपना मानसिक संतुलन कायम रख निर्वाण-पद की प्राप्ति की । दिगंबर संप्रदाय में आराधना से सबद्ध अनेक महत्वपूर्ण कथाकोशों की रचना की गयी ।

दिगंबरीय कथाकोश

(१) (क) उपलब्ध कथाकोशो से सबसे प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण पन्नाटसंघीय[1] हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश है (रचनाकाल ८९८ ई.) । इसमें कुल मिलाकर १५७ कथाएं हैं जिनमे विविध विषयो की चर्चा है । सभी कथाएं बीजरूप में भगवती आराधना मे पायी जाती है । इन कथाओं मे यम मुनि की कथा, अभयकुमार की बुद्धि चमत्कार की कथाएं, श्रीभूति पुरोहित की कथा, कडारपिंग की कथा, देवरति नृप की कथा, चारुदत्त श्रेष्ठी की कथा, नील लोहित की कथा, राजमुनि की कथा, पिन्नाकगंध-कथा,

---

१ - ज्ञातव्य है कि हरिवंशपुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन की भांति बृहत्कथाकोश के कर्ता हरिषेण भी पुन्नाट संघ के थे । दोनों ग्रंथों की रचना वर्धमानपुर (वढवाण, काठियावाड) में हुई थी । हरिवंशपुराण के लिखे जाने के १४८ वर्ष पश्चात् वि स ९५५ (८९८ ई.) बृहत्कथाकोश लिखा गया ।

मृगध्वज-कथा आदि कथाओं के अतिरिक्त कपिला व्राह्मणी, वैद्य-कथानक, वृषभ कथा, तापस-गज कथा, शिवनितरु-कथा, घूक-सगत-हस-कथा आदि नीतिशास्त्र संबंधी लौकिक कथाएं भी संग्रहीत है जो पंचतंत्र आदि लौकिक कथा-ग्रथ मे पायी जाती है । उल्लेखनीय है कि इनमे से अनेक कहानियां श्वेतांबरीय प्रकीर्णको (पइण्णा) एवं प्राचीन महाराष्ट्री मे लिखित वसुदेवहिंडि आदि ग्रंथों मे पायी जाती है । इससे अनुमान होता है कि इन कथाओं का कोई सामान्य स्रोत रहा होगा । इस कथाकोश की कतिपय कथाओं (६३-७०) को लेकर सम्यक्त्वकौमुदी नामक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना की गई है ।

भाषाशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से भी यह कथाकोश महत्वपूर्ण है ।[१]

(ख) भगवती आराधना से सम्बद्ध दूसरा कथाकोश श्रीचन्द्र (ईसा की ११वीं शताब्दी) का है जो अपभ्रंश में है; इसमें ५३ कथाएं है । ग्रथकर्ता पहले भगवती आराधना की गाथा उद्धृत करते है, फिर कहानी देते है ।

(ग) पंडित प्रभाचन्द्र का कथाकोश संस्कृत गद्य मे है; बीच-बीच में सस्कृत और प्राकृत के उद्धरण दिये है । इसे आराधना-कथाप्रबध भी कहा गया है; इसमें १२२ कथाएं हैं । ग्रंथ की रचना परमार नरेश भोज के उत्तराधिकारी जयसिंहदेव के राज्यकाल मे धारा नगरी में की गयी थी । प्रभाचन्द्र का समय ईसवी सन् ९८० से १०५५ के बीच माना जाता है ।

(घ) नेमिदत्त अथवा ब्रह्म नेमिदत कृत आराधना-कथाकोश प्रभाचन्द्र कृत गद्यात्मक कथाकोश का ही पद्यात्मक विस्तृत रूपान्तर है । इसमे १४४ कथाएं है । कुछ कथाएं प्रभाचन्द्र कृत कथाकोश में नही पाई जाती । इनका समय ईसा की सन् १५वीं शताब्दी का आरभ है ।

(ङ) कन्नड़ के वड्डाराधने मे केवल १९ कथाएं हैं जो भगवती आराधना की १५३४ - १५५२ तक की गाथाओ से संबद्ध है । प्रत्येक कथा के आरंभ में गाथा उद्धृत की गयी है और तत्पश्चात उसका कन्नड़ मे व्याख्यान है । प्राकृत (अपभ्रंश) के

---

१ - देखिये ए. एन. उपाध्ये, बृहत्कथाकोश की भूमिका (पृ १०२-१०) ।

इस कथाकोश के कर्ता रामचन्द्र मुमुक्षु (ईसवी सन् की १२वी शताब्दी का मध्य) अपने समय के बहुश्रुत विद्वान थे । संस्कृत के अलावा वे कन्नड भाषा के भी विद्वान थे । अपनी रचना में इन्होंने रविषेण कृत पद्मपुराण, जिनसेन कृत हरिवंशपुराण, जिनसेन गुणभद्र कृत महापुराण, हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश से बहुत-सी कथाएं ली हैं; कन्नड वड्डाराधने की कुछ कथाएं भी पाई जाती है । इस कथाकोश की लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि समय-समय पर अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद किये गये । सन् १३३१ मे कवि नागराज ने चम्पूपद्धति द्वारा कन्नड में इसका रूपांतर किया;[1] इसका मराठी ओवी मे अनुवाद सन १८२१ में जिनसेन द्वारा किया गया । पाण्डे जिनदास, दौलतराम, जयचन्द्र, टेकचन्द और किशनसिंह ने हिन्दी अनुवाद किये । कवि रइधु ने अपभ्रंश में पुण्णासव- कहाकोसो की रचना की ।

(३) श्रुतसागर बहुश्रुत विद्वान थे । उन्होंने अपने को ब्रह्म श्रुतसागर या देशयती-श्रुतसागर के नाम से अभिहित किया है । ये कलिकाल-सर्वज्ञ, उभय-भाषा-कवि-चक्रवर्ती, व्याकरण-कमल-मार्तण्ड और तार्किक-शिरोमणि कहे जाते थे । इन्होंने तत्त्वार्थ वृत्ति, षट्प्राभृत-टीका, यशस्तिलक-चन्द्रिका आदि ग्रंथों के अतिरिक्त कथाकोश की भी रचना की है जिसे व्रत-कथाकोश अथवा कथावलि भी कहा गया है । इसमें व्रतो, नियमों और अनुष्ठानों की कथाएं दी हुई हैं । इनका समय विक्रम की १६वीं शताब्दी हैं ।

हरिवंशपुराण में यह सूची तीन स्थानों पर दी हुई है (५.७०५-१७; ८.१०६-१३; ३८.३१-५) । श्वेताम्बरीय आगम-बाह्य अंगविज्जा (५१, २०५ आदि; ९.६९) में भी देवियों की सभी सूची आती है । मरुदेवी की सेवा में उपस्थित होने वाली श्री, ह्री आदि देवियों के लिए देखिए, जिनसेन कृत आदिपुराण (पर्व १२) । इन देवियों के सब नाम दिक्कुमारियों के न होकर, कुछ नाम तिथियों के, कुछ दुर्गा के, कुछ अप्सराओं के, कुछ इन्द्र-कन्याओं के, कुछ स्वर्ग के विमानों के और कुछ नाम दिशाओं भी सम्मिलित कर लिये गये हैं । आल्सडोर्फ की मान्यता है कि जिनसेन की हरिवंशपुराण में उल्लिखित देवियों के नाम श्वेतांबरीय जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति से मेल न खाकर बौद्ध परंपरागत नामों के साथ मेल खाते हैं, अतएव ये श्वेतांबर परंपरागत नामों से अलग हैं और श्वेतांबर सम्प्रदाय द्वारा मान्य परंपरा की अपेक्षा प्राचीन हैं । विस्तार के लिए देखिए, जगदीशचन्द्र जैन, मुनि कन्हैयालालजी द्वारा संपादित 'धम्माणुओगो' की इन्ट्रोडक्शन, आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद, १९८२

१ - कर्नाटक कविचरिते, १, बंगलोर, १९२४

(४) भट्टारक सकलकीर्ति ईसवी सन् की १५वीं शताब्दी के एक अन्य बहुश्रुत विद्वान हो गये है । इन्होने संस्कृत और राजस्थानी भाषा मे अनेक ग्रंथो की रचना की है । हरिवंशपुराण का प्रथमांश, आदिपुराण, उत्तरपुराण, श्रीपालचरित आदि अनेक ग्रंथों के अतिरिक्त कथाकोश अथवा व्रत कथाकोश का भी इन्होने प्रणयन किया है । इसमें विभिन्न व्रतों संबंधी कथाओ का सकलन है ।

(५) सम्यक्त्वकौमुदी का उल्लेख किया जा चुका है । इस नाम की अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं । कथा-कहानियो का यह लघुकोश पंचतत्र की सुलभ एवं रोचक शैली में लिखा गया है । यहा सम्यक्त्व की प्राप्ति से सबंधित आठ कथाएं दी गयी है जो अन्तर्कथाओ से जुड़ी हुई है । अर्हद्दास नाम का सेठ अपनी मित्रश्री, खण्डश्री, विष्णुश्री, नागश्री, पद्मलता, कनकलता, विद्युल्लता और कुंदलता नामक आठ पत्नियो को सम्यक्त्व-प्राप्ति संबंधी कहानियां सुनाता है । उसकी आठो पत्नियां भी अपने सम्यक्त्व लाभ की कहानिया कहती है । इन कहानियों को वृक्ष के नीचे खड़े हुए राजा और मंत्री तथा वृक्ष पर चढ़ा हुआ स्वर्णखुर चोर भी सुन लेते हैं । राजा सुयोधन की एक रोचक कथा दी हुई है जो अपने कोतवाल यमपाश को चोरी के अपराध मे फंसाने के लिए राजकोष में चोरी करता है । कोतवाल दरवार में हाजिर होता है उसे सात दिन के भीतर चोर का पता लगाने का आदेश दिया जाता है ।

कोतवाल सात दिन तक चोर की छानबीन करता है, लेकिन चोर का कही पता नहीं लगता । वह प्रतिदिन राजा को एक आख्यान सुनाता है ।

पहले आख्यान मे कहता है :

१) स्थिता वयं चिरकालं पादपे निरुपद्रवे ।

मूलात् सुमुत्थिता वल्ली जातं शरणतो भयं ॥

— हम चिरकाल तक उपद्रवरहित वृक्ष पर रहे, किन्तु वृक्ष के मूल भाग से एक लता उत्पन्न हुई है और अब हमे रक्षक से ही भय खड़ा हो गया है ।[1]

(२) दूसरे दिन कोतवाल ने कुम्हार का आख्यान सुनाया :

---

१ - पूरी कहानी के लिए देखिए पृ ७१-७२.

जिस मृत्पिड से मैं दीन-दुःखी प्राणियों को सदैव भिक्षा देता रहा, देवताओं को बलि अर्पित करता रहा, घर आये हुए स्नेही स्वजनों का सम्मान करता रहा, और जिस मृत्पिड को बहुत दूर से लाकर बडे श्रमपूर्वक तैयार किया, खेद है कि उसी मृत्पिड ने आज मेरी कमर तोड दी है । आज मुझे अपने रक्षक से भय हो गया है ।

(३) तीसरे दिन कोतवाल ने तीसरा आख्यान सुनाए :

"पिता जिसका गला घोटे, मां जहर पिलाये और राजा जिसे लूटने-खसोटने को तैयार बैठा हो, वह किसकी शरण जाये ?"

(४) चौथे दिन आख्यान सुनाते हुए कोतवाल ने कहा :

"जहां संपूर्ण पानी मे विष घुला हो, दुष्टों के हाथ मृत्यु होती हो और राजा स्वच्छन्द प्रकृति का हो, वहां सज्जन पुरुष कैसे रह सकते हैं ?"

(५) पांचवे दिन कोतवाल ने आख्यान सुनाते हुए एक श्लोक पढ़ा :-

बीजानि येन जायंते सिच्यंते येन पादपाः ।
तन्मध्येऽह मरिष्यामि जातं शरणतो भयं ॥

— जिससे बीज पैदा होते है और जिससे वृक्ष सींचे जाते है, उसी (गंगा) के बीच मुझे मरना होगा । मुझे अपने रक्षक से ही भय हो गया है ।

(६) छठे दिन यमपाश राजा सुयोधन की सेवा मे पुनः उपस्थित हुआ । उसने श्लोक पढ़ा :

आराम-रक्षका जाता मर्कटाश्चलचेतसः ।
सुराया रक्षकाः शौण्डा स्वप्रयोजनकारिणः ॥
वृका भवंत्यजारक्षाः गमस्त-वसुधातले
प्रनष्ट मूलतः कार्य नष्टमेव विदुर्बुधा. ॥

— जहां चंचल चित्तवाले बंदर बगीचे के रखवाले हों, जहां स्वप्रयोजन सिद्ध करने वाले मद्यप मद्य के रक्षक हों, जहां भेड़िये बकरियों के रक्षक हों, ऐसी हालत में विद्वानों का कहना है कि कार्य जडमूल से ही नष्ट हुआ समझना चाहिए ।

आज आखिरी, सातवां दिन था । यमपाश कोतवाल पुन: राजा की सेवा में उपस्थित हुआ । वह कहने लगा :

"जब बहू ने अपनी सास की साड़ी एरण्ड के वृक्ष पर टंगी हुई देखी तो वह अपने पतिदेव से बोली : हे प्रियतम, लता तो जडमूल से नष्ट हो गई है, अब जो तुम्हे रुचे सो करो ।"

यमपाश ने आख्यान सुनाया :

उज्जयिनी में यशोभद्र नाम का एक धनी व्यापारी रहता था । एक बार वह अपनी पत्नियो समेत व्यापारियो के साथ धनार्जन करने विदेश गया । कुछ समय बाद जब वह लौटकर आया तो उसे एरंड वृक्ष पर टंगी हुई अपनी मां की साड़ी दिखाई दी । यह देखकर यशोभद्र को बहुत क्रोध आया । उसने अपनी स्त्रियो से कहा, "तुम लोग यही ठहरो, मै जाकर देखता हूं क्या बात है !"

कोतवाल यमपाश का यह आख्यान सुनकर राजा सुयोधन गुस्से से लाल-पीले हो गये । वे कहने लगे, "अरे दुष्ट, तूने छह दिन तो उल्टे-सीधे किस्से सुनाकर गुजार दिये, आज सातवां दिन है । यदि तू आज चोर को पकड़कर नही लाया तो याद रख, मैं तुझे प्राणदण्ड दिये बिना न छोड़ूंगा ।"

राजदरबार मे युवराज, मंत्री-पुत्र और पुरोहित-पुत्र आदि सभी मौजूद थे । कोतवाल ने ज्योंही राजा का क्रोधपूर्ण आदेश सुना, उसने फौरन ही सभासदों के सामने राजा की मणिमय खडाऊं, मंत्री की अंगूठी और पुरोहित का यज्ञोपवीत निकालकर रख दिये जो उसे राजकोष से मिले थे ।

सभा को सम्बोधित करके यमपाश कहने लगा - "देखिए, सज्जनो, जहां मंत्री और पुरोहित को साझेदार बनाकर स्वयं राजा चोरी करता हो, वहां किसी का रहना उचित नही । हम लोगों का रक्षक ही भक्षक बन गया है ।"

यमपाश की बात सुनकर सभासदो को उसकी सचाई पर विश्वास हो गया । युवराज ने राजा, मंत्री और पुरोहित को देश से बहिष्कृत कर दिया ।

इस रचना में अन्यत्र भी अन्तर्कथासूचक पंचतंत्र का श्लोक उद्धृत है, यद्यपि इस श्लोक से संबंधित कथावस्तु को छोड़ दिया गया है । पंचतंत्र (मित्रभेद, कथा १२) के निम्नलिखित परिवर्तित श्लोक को देखिए :

पराभवो न कर्तव्यो यादृशे तादृशे जने ।
तेन टिट्टिभमात्रेण समुद्रो व्याकुलीकृतः ॥

— जैसे-तैसे हर व्यक्ति का पराभव न करना चाहिए । देखो, छोटे से टिट्टिभ ने समुद्र को कैसे विपत्ति मे डाल दिया ।

सम्यक्त्व कौमुदी के कर्ता नागदेव हैं जिन्होंने लगभग १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे इसकी रचना की है । इस नाम की अन्य कृतियों मे नागदेव की यह कृति सबसे प्राचीन है ।[१]

(६) नागदेव की दूसरी कृति है मदन-पराजय । मदन-पराजय नाम की भी कई रचनाएं हैं । इनमे हरिदेव कृत अपभ्रंश की रचना प्रसिद्ध है जिसके आधार से नागदेव की यह संस्कृत रचना लिखी गयी है । पंचतंत्र और सम्यक्त्वकौमुदी की शैली पर ही इस रचना का प्रणयन हुआ है । भवनगर के राजा मकरध्वज को अपने प्रधान सेनापति मोह से पता चलता है कि जिनराज मुक्तिकन्या से विवाह करने जा रहे हैं । यह जानकर विवाह में विघ्न-बाधा उपस्थित करने के लिए वह रति और प्रीति नाम की अपनी पत्नियों को मुक्तिकन्या के तथा राग और द्वेष को जिनराज के पास भेजता है । किन्तु अपने प्रयत्न में वह सफल नही होता । इसपर मकरध्वज के सेनापति मोह और जिनराज के सेनापति संवेग की सेनाओं मे युद्ध छिड़ जाता है । युद्धक्षेत्र मे स्वयं जिनराज उपस्थित हो मकरध्वज को परास्त कर देते हैं । यह देखकर मकरध्वज की पत्नियां प्राणों की भीख मांगने उपस्थित होती हैं । मकरध्वज को राज्य की सीमा से बहिष्कृत कर दिया जाता है । वह निराश होकर आत्मघात कर लेता है, और अनंग होकर अदृश्य हो जाता है ।

---

१ - हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश (६३-७०) में यह कहानी आती है । सम्यक्त्वकौमुदी, जैन ग्रंथ कार्यालय, हीराबाग, बम्बई से प्रकाशित हुई है ।

जिनराज सिद्धसेन की पुत्री मुक्ति से विवाह करने के लिए कर्म-रूपी धनुष तोड़कर मोक्षपुर रवाना होते है जहां मुक्ति-कन्या उनके गले मे जयमाला डाल उनका वरण करती है ।

इस रचना में रूपको की सुंदर योजना बन पड़ी है । जगह-जगह सुभाषित और सूक्तियो की भरमार है ।[१]

(७) धर्मपरीक्षा नाम की रचनाएं भी अनेक जैन विद्वानो ने लिखी है । यहां हम सुभाषितरत्नसंदोह, पंचसंग्रह, उपासकाचार, आराधना आदि ग्रंथों के रचयिता सुप्रसिद्ध अमितगति कृत धर्मपरीक्षा की ही चर्चा करेंगे । अमितगति धारा-नरेश भोज की सभा के रत्न थे । विक्रम संवत् १०७० (सन् १०१३) में उन्होनें अपने ग्रंथ को केवल दो मास में लिखकर पूरा किया । यह ग्रंथ हरिभद्रसूरि के धूर्ताख्यान के ढंग का है जिसमे ब्राह्मणो की पौराणिक कथाओ की खिल्ली उड़ाते हुए उन्हे अविश्वसनीय ठहराया गया है । यहां अन्य भी अनेक छोटे-मोटे आख्यान मौजूद है । मूर्खो का एक आख्यान पढ़िये :

एक बार की बात है, चार मूर्ख किसी महात्मा से मिले । महात्मा ने उन सबका अभिवादन किया । चारो आपस मे झगड़ने लगे कि महात्मा ने उस अकेले का ही अभिवादन किया है । वे फिर धर्मात्मा के पास पहुंचे । उसने कहा, "जो तुममे सबसे अधिक मूर्ख हो, मैंने उसी का अभिवादन किया है ।" चारों अपनी मूर्खता का प्रदर्शन करने चले ।

पहले मूर्ख ने दीपक की लौ से अपनी दोनो आंखे जला डाली जिससे कि वह सोती हुई अपनी दोनो पत्नियो को विघ्न-बाधा उपस्थित न करे । दूसरे ने अपनी दोनो दुष्ट पत्नियो से अपनी दोनो टांगे तुड़वा ली । चौथे ने अपनी सास के भय से अपने गालो को छिदवा लिया । तीसरे मूर्ख ने अपनी पत्नी से शर्त लगाई कि जो पहले बोले, वह लड्डू खाने को दे । पति और पत्नी दोनों चुपचाप बिस्तर पर लेट गये । इस समय एक चोर ने घर मे घुसकर उनका सारा माल-असबाब अपनी गठरी

---

१ - डाक्टर हीरालाल जैन की भूमिका सहित, अपभ्रंश और संस्कृत दोनों में ज्ञानपीठ, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से प्रकाशित हुए हैं ।

मे बांध लिया । दोनो मे से कोई कुछ न बोला । इतने में वह चोर औरत के पास आकर उसके कपड़ों में हाथ डालने लगा । यह देखकर औरत घबरायी । उसने जोर से चिल्लाकर अपने पति से कहा : अरे, तुम अभी भी चुपचाप पड़े देख रहे हो ?" कहने की आवश्यकता नहीं कि पत्नी को लड्डू खिलाने पड़े ।[1]

श्वेताम्बरीय कथाकोश

दिगम्बर आचार्यो के मुकाबले मे श्वेताम्बर आचार्यों ने कथाकोशों के निर्माण मे विशेष योगदान दिया । ईसा की नौवीं-दसवी शताब्दी के पूर्व जैन आचार्यों द्वारा रचित कथाग्रंथों की संख्या अपेक्षाकृत कम थी, किन्तु ग्यारहवी-बारहवी शताब्दी मे श्वेतांबर संप्रदाय के विद्वानों मे एक अभूतपूर्व जागृति पैदा हुई जिससे दो सौ-तीन सौ वर्ष के भीतर प्रचुर मात्रा मे कथा-ग्रंथो का निर्माण हुआ । उल्लेखनीय है कि इस समय गुजरात, राजस्थान और मालवा में जैन राजाओं, महामात्यों, सेनापतियो, श्रेष्ठियो और सार्थवाहों का प्रभाव बढ़ा जिससे ये प्रदेश जैन आचार्यों की प्रवृत्ति के केंद्र बन गये । एक-से-एक सरस चुनी हुई कथाओ का कथाकोशो में संकलन किया गया और इस प्रकार कितने ही कथाकोश तैयार हो गये । ये कथाकोश प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश में लिखे गये । यहां कतिपय कथाकोशो का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है :

(१) कहाणयकोस (कथाकोपप्रकरण) - इसके कर्ता युग-प्रधान श्वेतांबर आचार्य जिनेश्वरसूरि है । अनेक धुरंधर जैन विद्वान् उनके शिष्य-प्रशिष्यों में हो गये हैं, जिन्होंने उनका अत्यन्त आदरपूर्वक स्मरण किया है । उनकी साहसिकता एवं कार्यतत्परता की तुलना शिवजी के उन भक्तो से की गई है जो अपने कंधों मे गड्ढे बनाकर उनमे दीपक जलाते हुए प्रयाग किया करते थे । जिनेश्वरसूरि ने प्राकृत और संस्कृत के अनेक ग्रंथों की रचना की है ।

---

१ - एन. मिरोनोव, दी धर्मपरीक्षा डेस अमितगति, लाइपज़िग, १९०३; हिन्दी अनुवाद जैन ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९०८; जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी, कलकत्ता, १९०८ ।

इस लोकप्रिय कथाकोश में जिनपूजा, साधुदान, जैनधर्म के प्रति उत्साह आदि से संबधित ३६ मुख्य और चार-पांच अवांतर कथाएं संकलित है ।[1]

(२) कथाकोश - कर्ता अज्ञात । यह संस्कृत गद्य-पद्यमयी रचना है; बीच-बीच मे प्राकृत की गाथाएं दी है । इसमे कुल मिलाकर २७ कथाएं है जिनमे श्रावको के दान, पूजा, शील आदि संबधी कथाओ का संकलन है । प्रारंभ मे धनद की कथा है और अंत मे नल-दमयंती की । सी. एच. टौनी द्वारा अग्रेजी में अनूदित (लंदन, १८९५; दूसरा संस्करण नई दिल्ली, १९७५) । समय ईसवी सन् ११ वी शताब्दी का अतिम चरण ।[2]

(३) आख्यानमणिकोश (अथवा कथामणिकोश) - कर्ता उत्तराध्ययन पर सुखबोधा टीका (सन् १०७३ मे समाप्त) के रचयिता नेमिचन्द्र सूरि (अपर नाम देवेन्द्रगणि), वृत्तिकार आम्रदेव सूरि (११३४ ई.) । वृत्तिकार आम्रदेव नेमिचन्द्र सूरि के गुरुभाई थे । मूल गाथाएं ५२ जो ४१ अधिकारों मे विभक्त हैं । मूल और टीका दोनों प्राकृत पद्यो मे है । ११७ आख्यान प्राकृत में है; कुलानन्द आख्यान (१२१) के पद्यो का प्रथम सस्कृत में और दूसरा चरण प्राकृत मे है । कुछ आख्यान अपभ्रंश मे है; वीच-वीच मे सस्कृत के पद्य मिल जाते हैं । इन आख्यानों में शील, तप, भावना, सम्यक्त्व, स्वाध्याय, प्रवचन-उन्नति आदि संवंधी कथाएं हैं ।[3]

(४) कहारयणकोस (कथारत्नकोश) - कर्ता गुणचन्द्रगणि (अपर नाम देवभद्रसूरि; १२ वी शताब्दी का आरंभ) । इन्होने पासनाहचरिय, महावीरचरिय आदि अनेक ग्रंथो की रचना की है । कथारत्नकोश लेखक की महत्वपूर्ण रचना है जिसमें अनेक अपूर्व लौकिक कथाओं का संकलन है । यहां ५० कथानक हैं जो गद्य-पद्यमय अलंकार-प्रधान प्राकृत भाषा में निबद्ध है । संस्कृत और अपभ्रंश का भी उपयोग

---

१ - जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास (संशोधित सस्करण), १९८४, पृ ३७५-८२

२ - जगदीशलाल शास्त्री द्वारा सपादित, मोतीलाल बनारसीदास १९४२; आर्ड हैनमान, म्यूनिक, १९७४ ।

२ - जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास (संशोधित सस्करण), पृ ३८७-९६.

किया गया है । इन कथानकों में व्रत-नियम, सच्चा देव-गुरु-शास्त्र, करुणा आदि का वर्णन किया गया है ।[१]

(५) कुमारवाल-पडिवोह (कुमारपालप्रतिबोध) - इसे जिनधर्म-प्रतिबोध भी कहा गया है । गुजरात के चालुक्य नरेश कुमारपाल के प्रतिबोध के लिए आचार्य हेमचन्द्र ने ये कहानियां कही थी । सोमप्रभसूरि ने ११८४ ई. मे जैन महाराष्ट्री प्राकृत मे इसकी रचना की; बीच-बीच मे अपभ्रंश और संस्कृत का भी उपयोग हुआ है । अनेकानेक सूक्तियां यहां मिलती हैं । पांचवां प्रस्ताव अपभ्रंश में है । पांच प्रस्तावो में कुल मिलाकर ५४ कहानियां हैं जो गद्य-पद्य मे लिखी गई हैं । पांच व्रत, देवपूजा, गुरुसेवा, शीलव्रत-पालन, चार कषाय, दान आदि कहानियों के विषय हैं ।[२]

(६) पाइअ-कहा-संगह (प्राकृत-कथा-संग्रह) - पउमचन्द सूरि के किसी अज्ञातनामा शिष्य ने विक्कमसेण नामक प्राकृत कथाग्रंथ की रचना की थी । इस कथा-ग्रंथ में उल्लिखित १४ कथाओं मे से १२ कथाएं यहां उद्धृत हैं । इसकी एक हस्तलिखित प्रति सवत् १३९८ में उपलब्ध हुई है, इससे यही अनुमान किया जाता है कि मूल ग्रंथकार का समय इसके पूर्व होना चाहिए । यहां दान, शील, तप, भावना आदि को लेकर सरस कथाओं का संकलन किया गया है ।[३]

(७) कथाकोश, विनोदात्मक-कथासंग्रह, अन्तर कथासंग्रह अथवा कथासंग्रह- इसके कर्ता मलधारि राजशेखर सूरि हैं जिन्होंने ईसवी सन् की १४ वीं शताब्दी के मध्य में इस कथाकोश की रचना की । यहां कुल मिलाकर १४ सरस कथाओ का संग्रह है । पंचतंत्र की शैली का अनुकरण किया गया है । बोलचाल की शैली में वाक्चातुर्य और हास-परिहास संबंधी अनेक लौकिक कहानियां दी हुई हैं । अनेक लौकिक कथाएं पंचतंत्र, और बौद्धों की जातक कथाओं की हैं; संस्कृत,

---

१ - वही, पृ ३९१-९६
२ - वही, पृ ४०२-९
२ - वही, पृ ४०९-१२

महाराष्ट्री और अपभ्रंश की अनेक उक्तियां उद्धृत हैं । इनमे से अनेक कथा-कहानियां आगे चलकर बीरबल के नाम से प्रसिद्ध हुई हैं ।[१]

(८) कथा-महोदधि, कर्पुरकर, कर्पुरकथा महोदधि अथवा सूक्तावलि - इसका आरंभ 'कर्पूर प्रकर' शब्द से होता है अतएव इस कथाकोश को कर्पूरप्रकर नाम से भी अभिहित किया गया है । रत्नशेखर सूरि के शिष्य सोमचन्द्र गणि ने १४४८ ई. में इसकी रचना की है । जिनसागर सूरि ने इसपर टीका लिखी है । प्रत्येक पद्य में एक या अधिक दृष्टान्त रूप कहानियां दी गई है ।[२]

(९) कथाकोश, प्रवंध-पचशती, पंचशतीप्रवंध-संवंध अथवा पंचशती प्रवोध-संवंध- किंचित् गुरु-परम्परा से, तथा किंचित् जैन और जैनेतर ग्रंथों का आधार लेकर इस कथा-संग्रह की रचना की गयी है । इसमे खासकर प्रवंध-कोश, प्रवंध-चिन्तामणि, पुरातन-वंधसग्रह, उपदेश-प्रत-रंगिणी, आवश्यक निर्युक्ति टीका आदि जैन-ग्रंथो तथा हितोपदेश, पंचतंत्र, रामायण, महाभारत आदि अजैन-ग्रंथों का उपयोग किया गया है । कथाकोश की भाषा गद्य-पद्य मिश्रित है; संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के सुभाषित अवतरण के रूप मे प्रस्तुत किये गये है । लोकभाषा मे प्रचलित कितने ही शब्दो का संस्कृतीकरण कर दिया गया है जो भाषाशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है । कलन्दर (फकीर, अरबी), खरशान (खुरासन, फारसी), बीवी (फारसी), भूत (बुत, फारसी), मसीत (मसीद, अरबी), मुद्गल (मोगल, तुर्की), सुरत्राण (सुलतान, अरबी), आदि अरबी-फारसी के शब्दों का यहां प्रयोग हुआ है । इससे पता चलता है कि ईसवी सन् की १५ वी शताब्दी मे मुस्लिम संस्कृति का संपर्क दिनो-दिन बढ़ रहा था । विशेषकर प्राचीन और मध्यकालीन गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी के विकास के लिए इस प्रकार की रचनाओ का अध्ययन बहुत उपयोगी है । लोककथा ग्रंथों के अध्ययन की दृष्टि से भी ये रचनाए महत्वपूर्ण हैं ।

---

१ - ऋषभदेवजी केशरीमल श्वेतांबर संस्था, १९३७; गुजराती अनुवाद, जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि सं १९७८

२ - जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, सन् १९११

इस कथाकोश मे चार अधिकार हैं जिनमें ६२५ कथानकों का संकलन है । पंचतंत्र की अनेक कथाओ को यहां ग्रहण कर लिया गया है; बहुत-सी कथाएं पंचतंत्र की सरल एवं रोचक शैली में लिखी गई है । जातक कथाएं भी मिलती है । ७५ वी कहानी मे ताजिक ग्रंथ की रचना-संबंधी कथा दी है । २११ वी कथा में लक्ष्मी और दारिद्रय का संवाद है । मदोन्मत्त सिंह की कथा आती है जिसे एक छोटे से खरगोश ने कुएं मे गिरा दिया । लक्ष्मीसागर सूरि के शिष्य शुभशील गणि ने ईसवी सन् १४६४ में इस महत्त्वपूर्ण कथासंग्रह की रचना की ।[1]

(१०) कथाकोश, भरतादिकथा अथवा भरतेश्वरी बाहुबलि-वृत्ति — शुभशील गणि की यह दूसरी महत्वपूर्ण रचना है जिसे उन्होंने ईसवी सन् १४५२ में लिखा है । मूलग्रंथ में प्राकृत की १३ गाथाएं है जिनका आरंभ 'भरहेसर बाहुबलि' से होता है । इन गाथाओ मे १०० कथानक सूचक-शब्दो द्वारा १०० कथानकों मे धर्म-परायण स्त्री-पुरुषों के नामो की श्रृंखला दी हुई है जो धर्म और तप साधना के लिए सुख्यात है । प्रस्तुत संस्कृत वृत्ति में गद्य-पद्य मिश्रित कथाएं दी हुई है, बीच-बीच मे प्राकृत के उदाहरण है । यह वृत्ति कथाओ का कोश है इसलिए इस रचना को कथाकोश भी कहा जाता है ।[2]

(११) शत्रुंजयकथाकोश - शुभशील गणि की यह एक अन्य रचना है जिसे धर्मघोष कृत शत्रुंजय-कल्प की वृत्ति के रूप मे ईसवी सन् १४६१ में लिखा गया है । यह वृत्ति विस्तृत कथाओ का कोश है ।

(१२) कथार्णव, इसिमंडल अथवा ऋषिमंडल स्तोत्र — धर्मघोष ने कथाओ के संग्रह रूप इस टीका-ग्रंथ को ईसा की १५ वी शताब्दी के अंतिम चरण मे लिखा । इस कथा-ग्रंथ पर बारह से अधिक टीकाएं उपलब्ध हैं । यहां ऋषिमंडल

---

१ - मृगेन्द्र मुनि द्वारा सम्पादित, डाक्टर एच. सी. भयाणी की महत्त्वपूर्ण भूमिका सहित, मुर्शिदाबाद सहित प्रकाशन, सूरत से १९६८ में प्रकाशित ।

२ - देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार, बंबई से दो भागों में, सन् १९३२, १९३७ ।

स्तोत्र की व्याख्या करते हुए शलाका-पुरुषों, तपस्वियों, धर्मात्माओं और जैन आचार्यों से संबंधित कथाएं दी गयी है ।[1]

(१३) उपदेशप्रासाद - यह एक विशाल कथाकोश है । यह २४ स्तभो मे विभक्त है, प्रत्येक स्तंभ मे १५-१५ व्याख्यान है । कुल मिलाकर इसमे ३६० व्याख्यान और ३४८ दृष्टांत-कथाएं है । इन स्तभो मे सम्यक्त्व, श्रावक के व्रत, जिनपूजा, तीर्थंकरो के पंच-कल्याणक, ज्ञानपचमी आदि पर्व, ज्ञानाचार, तपाचार, वीर्याचार आदि विषयो के विवेचन के लिए दृष्टान्त रूप कहानियां संकलित है । २१४ वे व्याख्यान (पृ. ७१-९२ अ) मे यवराजा की कथा उल्लिखित है जो पहले दी जा चुकी है । अनेक कथाए पर्वो से संबधित है जिन्हे 'पर्व-कथासंग्रह'[2] नाम से अलग प्रकाशित किया गया है । आचार्य विजयलक्ष्मीसूरि इस कथाकोश के कर्ता है । इसका गुजराती अनुवाद पांच भागो मे प्रकाशित हुआ है ।[3]

(१४) कथारत्नाकर — यह महत्त्वपूर्ण कथाकोश दस तरंगो मे विभक्त है जिसमें २५८ मनोरंजक कथाएं दी हुई है । इसके कर्ता हेमविजयगणि (१६०० ई.) है जिन्होंने सुपरिष्कृत सस्कृत मे इस कथाकोश को लिखा है, बीच-बीच मे सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी और पुरानी गुजराती के उद्धरण प्रचुर मात्रा मे पाये जाते है । यह पंचतंत्र की सुबोध शैली मे लिखी हुई रचना है जिसमे रामायण, महाभारत, भर्तृहरिशतक, पंचतंत्र, पंचाख्यान आदि अनेक लौकिक नीति-ग्रथो के उद्धरण मिलते है । यहां स्त्री-चातुर्य की कहानिया, मूर्खों, धूर्तो और विटो की कहानियां, पशु-पक्षियो की कहानिया आदि कहानियो के विविध रूप देखने को मिलते है । कलह भी एक कला है, उसके प्रकार बताये गये है ।कलह को लेकर एक ब्राह्मणी और सेठ की पुत्रवधू का संवाद आता है । (देखिये तरंग १, पृ. ५६) बल की अपेक्षा बुद्धि बड़ी

१- ऋषिमण्डलप्रकरण, आत्मवल्लभ ग्रंथमाला, सं. १३, वलद, १९३९ ।

२- चारित्रस्मारक ग्रंथमाला, ग्रंथांक ३४, अहमदाबाद, वि. स. २००१: 'सौभाग्य पञ्चम्यादि पर्व कथासंग्रह' के अन्तर्गत हिन्दी जैन आगम, प्रकाशन सुमति कार्यालय, कोटा, वि. स. २००६

३- जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, १९१४-१९२३: पांच भागों में गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित, वल्लभविजय जैन ग्रंथमाला, जोधपुर, १९५० ।

होती हैं, इस संबंध में श्रृगाल की कथा दी है (देखिए पृ. ७३ - ४) । सब बातों की तो कोई-न-कोई औषधि होती है किन्तु मूर्ख की औषधि नहीं होती, इस उक्ति को लेकर एक मूर्खशिरोमणि की कहानी दी है (देखिए पृ. १०७-८) । लक्ष्मी, सरस्वती, कीर्ति और आशा - इन चारों में आशा को प्रमुख बताया है क्योंकि आशा के सहारे ही मनुष्य जीता है (पृ. १०९-११४) । सिद्धिसुत तस्कर और मुशल चोर की मनोरंजक कथा दी है (पृ. १८६-१९७) । बीच-बीच में एक-से-एक सरस सदुक्तियां और सुभाषित दिये हुए हैं ।[1]

(१५) उत्तमकुमारचरित - यहां राजकुमार उत्तमकुमार के अद्भुत साहसिक कार्यों की कथा दी हुई है । यह रचना गद्य और पद्य दोनों में पाई जाती है । उत्तमकुमार की कथा इतनी लोकप्रिय हुई कि इसे लेकर अनेक विद्वानों ने रचनाएं लिखीं । इनमें सोमसुन्दर के शिष्य जिनकीर्ति, सोमसुन्दर के प्रशिष्य और रत्नशेखर के शिष्य सोममंडन गणि, शुभशील गणि और भक्तिलाभ के शिष्य चारुचन्द्र के नाम उल्लेखनीय हैं । उत्तमकुमार की कथा संस्कृत में लिखी हुई है; बीच-बीच में स्थानीय बोली के शब्दों के प्रयोग से लगता है कि यह रचना गुजरात में लिखी गयी थी ।[2]

(१६) पाल-गोपाल कथा अथवा श्रीपाल-गोपाल कथा - यहां पाल और गोपाल नामक दो भ्राताओं की साहसिक कथा है । दोनों एक स्थान से दूसरे स्थान

---

१ - हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२१; हर्टेल द्वारा जर्मन अनुवाद, म्युनिक, १९२०; अभी हाल में (१९७९) Das parlenmeer (मोतियों का सागर) नाम से संशोधित जर्मन संस्करण, आकर्षक रंगीन आवरण के साथ जर्मन गणतंत्र राज्य, बर्लिन की ओर से प्रकाशित ।

२ - ए. वेबर द्वारा सम्पादित व जर्मन में अनूदित, बर्लिन, १८८४; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२२ । (अ) उत्तमकुमारचरित, (आ) पाल-गोपाल कथा, (इ) अघटकुमार कथा, (ई) चम्पक श्रेष्ठि कथानक और (उ) रत्नचूड़ कथा - ये पांचों कथाएं, जर्मन गणतंत्र, बर्लिन (१९७५) से प्रकाशित Der Prinz a's Papagei (The Prince as a Parrot) नामक कथासंग्रह में संकलित हैं, [illegible] भूमिका लिखी है ।

३ - आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला, दर्पाई. [illegible] सं. १९७६; हर्टेल कृत जर्मन अनुवाद, [illegible], १९१७, जर्मन गणतंत्र, बर्लिन, १९७५ ।

पर भ्रमण करते है और अनेक साहसिक कार्यो के पश्चात् पशुओ और स्त्री की सहानुभूति प्राप्त कर यश के भागी बनते है । सोमसुन्दर सूरि के शिष्य जिनकीर्ति इसके कर्ता हैं । यह जर्मन भाषा में अनूदित है ।[1]

(१७) अघटकुमार कथा -- इसमे राजकुमार अघट की कथा है जो एक भाग्यशाली लड़के की परीकथा पर आधारित है । यहां पत्र के बदल जाने से कथा नायक अघटकुमार मृत्यु से बच जाता है । यह कथा गद्य और पद्य दोनो मे उपलब्ध है । जिनकीर्ति रचित अघट-नृप-कुमारकथा सस्कृत गद्य मे है जिसका जर्मन अनुवाद डाक्टर कुमारी शार्लोट क्राउज़े ने किया है (१९२३) । इसका पद्यबद्ध संस्करण अघटकुमारचरित के नाम से निर्णयसागर प्रेस (१९१७) से प्रकाशित हुआ है ।

(१८) चंपकश्रेष्ठि कथानक -- जिनकीर्ति की दूसरी रचना है । इसमे चपक श्रेष्ठी की कहानी है जो १५ वी शताब्दी के मध्य मे लिखी गयी है । इसमे तीन और सुन्दर उपाख्यान है जो भाग्य और पुरुषार्थ के महत्व को सूचित करते हैं । पहली कथा में लंका-नरेश रावण व्यर्थ ही भाग्यचक्र को चुनौती देता है । दूसरी कथा मे पुरुषार्थ के बल से भाग्य की कथनी भी बदल दी जाती है । तीसरी कथा एक वणिक् की है जो आखिर तक लोगो को धोखा देता रहा लेकिन अंत मे किसी वेश्या द्वारा ठगाया जाता है । यह कथा पूर्व और पश्चिम दोनो देशो मे प्रसिद्ध है; ब्राह्मण एवं बौद्ध साहित्य में भी पाई जाती है । चंपक श्रेष्ठी की कहानी टॉनी द्वारा अनूदित कथाकोश (पृ. १६९ आदि) और मेरुतुंग के प्रबध-चिन्तामणि मे भी मिलती है ।[1] जयविमल-गणि के शिष्य प्रीतिविमल (वि. सं. १६५६) तथा जयसोम ने भी यह कथा लिखी है ।[2]

(१९) रत्नचूड़-कथा -- यह कथा संस्कृत पद्य मे है । इसके कर्ता ज्ञानसागर सूरि १५ वी शताब्दी के मध्य में मौजूद थे । यहा श्रेष्ठिपुत्र रत्नचूड़ की

---

१ - हर्टल द्वारा जर्मन में अनूदित, लाइप्सिग, १९२२; जर्मन गणतंत्र, बर्लिन, १९७५ ।

२ - जमनाभाई भगुभाई, अहमदावाद, १९१६; जैन साहित्य का बृहद् इतिहास ६, पृ ३११

विदेश यात्रा की कथा दी गयी है । यात्रा के लिए प्रस्थान करते हुए रत्नचूड़ को उसका पिता व्यावहारिक बुद्धि की शिक्षा देता है । यात्रा के दौरान रत्नचूड़ धूर्तों की नगरी अनीतिपुर मे पहुंचता है जहां अन्यायी राजा का राज्य है, अविचार उसका मंत्री है और अशांति उसका पुरोहित । नगरी में अनेक चोर, उचक्के और ठग रहते हैं । एक अन्तर्कथा मे रोहक की कहानी दी हुई है जो अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर ऊपर से असंभव दिखाई देने वाले कार्यों को कुशलतापूर्वक सपन्न करता है । सोमशर्मा शेखचिल्ली की भांति हवाई महल बनाता है । रत्नचूड़कथा नाम की अन्य कथाएं भी जैन विद्वानो द्वारा लिखी गयी हैं ।[1]

(२०) पापबुद्धि-धर्मबुद्धि-कथानक — यहां पापबुद्धि राजा और धर्मबुद्धि मंत्री के माध्यम से पाप और धर्म का महत्व समझाया गया है । इसे कामघट कथा, कामकुंभ कथा अथवा अमरतेजा - धर्मबुद्धि नाम से भी कहा जाता है । यहां संस्कृत गद्य मे पाच कथाओं का सकलन है । मानविजय जी के शिष्य जयविजय ने धर्मपरीक्षा की रचना की थी, यह कथानक उसी का खण्ड है । जयविजय का समय १६-१७ वी शताब्दी माना जाता है ।[2]

(२१) अंबडचरित — यहा अबड के साहसिक कृत्यो की कहानी कही गयी है । इस विलक्षण जादुई कथा की रचना अमरसूरि ने तेरहवीं शताब्दी मे की है । अंबड एक बड़ा जादूगर है जो जादू के बल से आकाश मे उड़ सकता है, मनुष्य को पशु और पशुओं को मनुष्य बना सकता है और वह स्वयं जो चाहे बन सकता है । अपनी जादू की कला से वह गोरखा नाम की जादूगरनी के सात कठिन कार्यों को संपन्न कर सकता है तथा एक से एक सुदर बत्तीस पत्नियो और बेशुमार धन-सपत्ति और राज्य का स्वामी बन सकता है । इस कथा का सिंहासन-द्वात्रिंशिका (विक्रमचरित) मे वर्णित राजा विक्रमादित्य के कथा के साथ संबंध है ।[3]

१- यशोविजय ग्रंथमाला, सं ४३, भावनगर, १९१७, जे. हर्टेल द्वारा जर्मन अनुवाद, लाइपजिग १९२२, जर्मन गणतंत्र, बर्लिन, १९७०

२- हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०९, धर्मघोष मकरन्द, भुवनसूरि, जैन साहित्य [illegible] (मारवाड़) इटालवी में भी अनूदित ।

३- हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१०; [illegible] द्वारा जर्मन में अनूदित, लाइपजिग, १९२२ । जर्मन गणतंत्र, बर्लिन, १९७०

(२२) धर्मकल्पद्रुम — सस्कृत पद्यो मे लिखित नौ पल्लवो मे विभक्त यह एक बृहत्कथाकोश है जिसकी रचना मुनि सागर उपाध्याय के शिष्य उदयधर्म ने १४५० ई. के लगभग की है ।[१] धर्मकल्पद्रुम नाम की अन्य रचनाएं भी लिखी गयी है । एक के रचयिता धर्मदेव है जिन्होंने वि. स. १६६७ (१६१० ई.) मे इसकी रचना की । दूसरे के रचयिता धवलसार्थ (श्रावक) है ।[२]

(२३) उपमिति-भव-प्रपंचा कथा — इस कथा मे उपमाओ के माध्यम से भव-प्रपंच का विवेचन किया है, अतएव इसे उपमिति-भव-प्रपंचा नाम दिया गया है । अदृष्टमूलपर्यन्त नगर के निष्पुण्यक नाम के एक कुरूप दरिद्र भिक्षु की कहानी उपमाओं के माध्यम से कही गई है । यह दरिद्र भिक्षु अनेक रोगो से पीड़ित था । भिक्षा मे जो कुछ उसे रूखा-सूखा भोजन मिलता, उससे उसकी भूख शान्त न होती । एक बार वह नगर के राजा 'सुस्थित' के प्रासाद मे भिक्षा मागने गया । वहां 'धर्मबोधकर' रसोइये और राजा की कन्या 'तद्दया' ने उसे स्वादिष्ट भोजन खिलाया । उसकी आखो मे 'विमलालोक' अजन लगाया, 'तत्त्वप्रीतिकर' जल से मुख-शुद्धि कराई और उसके सदाचारी जीवन के लिए स्वादिष्ट भोजन का प्रबध किया । धीरे-धीरे वह स्वास्थ्य लाभ करने लगा । 'सद्बुद्धि' नामक धाय उसकी सेवा के लिए नियुक्त की गयी । भिक्षु की भोजन की अशुद्धि दूर हो गई और अब वह निष्पुण्यक से सपुण्यक बन गया । वह अपनी औषधि का लाभ दूसरो को देने का प्रयत्न करने लगा, पर लोग उसका विश्वास न करते । 'सद्बुद्धि' धाय ने उसे सलाह दी कि अपनी उक्त तीनो औषधियो को काष्ठपात्र मे रख राजप्रासाद मे रख दे जिससे कि लोग उसका लाभ उठा सके ।

यहा 'अदृष्टमूलपर्यन्त' नगर ससार है और 'निष्पुण्यक' स्वयं लेखक (सिद्धर्षि) । राजा 'सुस्थित' जिनराज है और उनका 'प्रासाद' जैनधर्म । 'धर्मबोधकर' रसोइया गुरु है और राजा की पुत्री 'तद्दया' उनकी दयादृष्टि । 'अंजन' ज्ञान, 'मुखशुद्धिकर जल' सच्ची श्रद्धा तथा 'स्वादिष्ट भोजन' सच्चरित्र है । 'सद्बुद्धि' ही पुण्य का मार्ग है ।

---

१ - देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार, बबई, वि. स. १९७३

२ - जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, ६ पृ. २६१

यह ग्रंथ आठ प्रस्तावो मे विभक्त है । समस्त मूलकथा रूपक अथवा रूपकों के माध्यम से कही गयी है जो सरल और सुन्दर संस्कृत गद्य में निबद्ध है । कथानक के ढांचे में अनेक उपकथाओ का समावेश किया गया है । आचार्य सिद्धर्षि ने ईसावी सन् १० वी शताब्दी के आरंभ में उपमिति-भव-प्रपंचा की रचना की है । पाठकों को आकर्षित करने के लिए लेखक ने रूपक को चुना है और इसीलिए उन्होंने अपनी रचना को प्राकृत मे न लिखकर संस्कृत में लिखना पसंद किया; क्योंकि संस्कृत दुर्विदग्धों के मन में बसी हुई है तथा अज्ञजनो को सद्बोध देने वाली और कर्णमधुर प्राकृत भाषा उन्हें अच्छी नहीं लगती ।[1]

---

१. पी. पिटर्सन और हर्मन याकोबी, बिब्लिओथेका इण्डिका, कलकत्ता १८९९-१९१४; देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फंड, बम्बई, १९१८-२०; डब्ल्यू. किर्फेल, जर्मन अनुवाद, लाईपज़िग १९२४; मोतीचन्द्र गिरधरलाल कापडिया, गुजराती अनुवाद (जैन धर्म प्र. स. भावनगर); विन्टरनिट्ज़, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ ५२६-३२

उपसंहार

१. जैन कथा साहित्य का भंडार विशाल है । जैन विद्वान् लोकसंग्रह को प्रमुख मानकर चले, अतएव उन्होंने जन-सामान्य के लिए प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, कन्नड़, तमिल, पुरानी हिन्दी, पुरानी गुजराती और राजस्थानी में भरपूर कथा-साहित्य का निर्माण किया । यह कथा-साहित्य भगवान महावीर के समय से चला आ रहा है । उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने इसे पुष्पित एवं पल्लवित किया और समय बीतने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार, गंगा नदी के प्रवाह की भाति, यह दूर-दूर तक प्रवाहित हुआ । लगभग ईसवी सन् की चौथी शताब्दी से लेकर १७ वी शताब्दी तक निर्बाध रूप से यह साहित्य गतिमान रहा, विशेष रूप से ११ वीं -१२ वी शताब्दी के आसपास, गुजरात एव राजस्थान में बहुरंगी प्रवृत्तियो के साथ आगे बढ़ा ।

२. साहित्य की अन्य विधाओ मे कथा-साहित्य सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है । जो बात हम अन्य विधाओं के माध्यम से कहने मे कदाचित् असमर्थ रहते हैं, वह कथा-कहानी के माध्यम से रोचक रूप मे कही जा सकती है । अपनी कथा को रोचक बनाने के लिए उसमे संवाद, बुद्धि-चमत्कार, वाक्-कौशल्य, प्रश्नोत्तर, उत्तर-प्रत्युत्तर, हेलिका, प्रहेलिका, समस्यापूर्ति, सुभाषित, सूक्ति, कहावत तथा गीत-प्रगीत, गीतिका, चर्चरी, गाथा और छंद आदि का समावेश किया जा सकता हैं । कथा-कहानियां पढ़कर हम नीतिशास्त्र सीखते है, लोक-व्यवहार की जानकारी प्राप्त करते हैं; धूर्तों, विटों और मूर्खों से सावधान रहते है । मतलब यह कि कथा-कहानी एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो हमे जीवन मे अग्रसर होने के लिए उत्साहित और समाज के प्रति निष्ठावान बने रहने के लिए अनुप्राणित करता है ।

३. जैन कथा-साहित्य तुलनात्मक लोककथा-साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है । यहां ऐसी बहुत-सी कथाएं समाविष्ट हैं जो लोक-साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, और जैनेत्तर कथा-साहित्य मे क्वचित् ही उपलब्ध होती हैं । इस साहित्य में जन-जीवन का जो व्यापक चित्रण मिलता है, वह प्राय: अन्यत्र देखने

संदर्भ ग्रंथों की सूची

- अंगविज्जा, मुनि पुण्यविजय, प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, १९५७.
- उद्योतनसूरि, कुवलयमाला, सं. ए. एन. उपाध्ये, बम्बई, १९५९. १९७०.
- ऐल्विन, वैरियर, फोक-टेल्स ऑफ महाकोशल, बम्बई, १९४४.
- कन्नड़ प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रंथसूची, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९४८.
- गुलाबचन्द्र चौधरी, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ६, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, १९७३.
- जिनसेन, हरिवंशपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६२.
- द अरेबियन नाइट्स ऐण्टरटेनमेंट (द थाउज़ेण्ड ऍण्ड वन नाइट्स), जिल्द ३, एडवर्ड विलियम लेन, लंदन, १८५९.
- बुधस्वामी : बृहत्कथा श्लोकसंग्रह, फेलिक्स लाकोत ऍण्ड एल. रैन्यू पेरिस, १९०८, १९२८.
- ब्लूमफील्ड, एम., पार्श्वनाथचरित, द लाइफ ऍण्ड स्टोरीज़ ऑफ द जैन सेवियर पार्श्वनाथ, बाल्टीमोर, १९११.
- भगवती आराधना, शिवार्य, सं. पंडित कैलाशचन्द्र शास्त्री, मूल एवं हिन्दी अनुवाद, दो भाग, सोलापुर, १९४८.
- मारिया लीच, स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर, माइथोलाजी ऍण्ड लीजेण्ड्स, जिल्द १-२, न्यूयार्क, १९५०.
- बोम्पास, सी. एच., फोकलोर ऑफ संथाल परगनाज़, लंदन, १९०९.
- विण्टरनीत्स, एम., ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्द २, नई दिल्ली, १९७७.
- विण्टरनित्स, एम., ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग १, दिल्ली, १९७६.
- वेलणकर, एच. डी., जिनरत्नकोश, पूणे, १९४४.

- संघदासगणि वाचक, वसुदेवहिंडि, सं. मुनि चतुरविजय पुण्यविजय, भावनगर, १९३०-३१.
- हरिषेण, बृहत्कथाकोश, सं. ए. एन. उपाध्ये, बम्बई, १९४३.
- हर्टल जे., ऑन द लिटरेचर ऑफ श्वेताम्बराज़ ऑफ गुजरात, लाइप्त्सिग, १९२२.
- सोमदेवसूरि, उपासकाध्ययन, संपादक एवं अनुवादक पंडित कैलाशचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, १९६४.

जैन कथा-साहित्य संबंधी डा. जगदीशचन्द्र जैन की कृतियां

१. लाइफ इन ऐंशिएण्ट इंडिया ऐज़ डिपिक्टेड इन दि जैन कैनन्स; न्यू बुक कंपनी, बम्बई, १९४७, लाइफ इन ऐंशिएण्ट इंडिया ऐज़ डिपिक्टेड इन जैन कैनन एँण्ड कामेण्ट्रीज़ (संशोधित एवं परिवर्धित), मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, १९८४.
२. प्राकृत साहित्य का इतिहास, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, १९६१, (संशोधित एवं परिवर्धित, १९८५).
३. जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५.
४. दो हजार बरस पुरानी कहानियां, भारतीय ज्ञानपीठ, १९४६ (संशोधित एवं परिवर्धित, १९६५).
५. प्राचीन भारत की कहानियां, हिन्द किताब्स लिमिटेड, बम्बई, १९४६; प्राचीन भारत की श्रेष्ठ कहानियां (संशोधित एवं परिवर्धित), भारतीय ज्ञानपीठ, १९७०.
६. रमणी के रूप, प्रतिमा प्रकाशन, जबलपुर, १९६१; नारी के विविध ᠈ (संशोधित एवं परिवर्धित), चौखंबा ओरिएण्टालिया, वाराणसी, १९७८.

७. प्राकृत जैन कथा-साहित्य, लालभाई दलपतभाई, भारतीय संस्कृति विद्या-मंदिर, अहमदाबाद, १९७१.

८. द गिफ्ट ऑफ लव एँण्ड अदर ऐंशिएण्ट इंडियन टेल्स अबाउट वोमेन (जे. सी. जैन एँण्ड मार्गरिट वाल्टर), विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७६; वीमेन इन ऐंशियेण्ट इंडियन टेल्स, मित्तल पब्लिकेशन्स, (संशोधित एवं परिवर्धित) नई दिल्ली, १९८७.

९. द वसुदेवहिंडि - ऐन ऑथेण्टिक जैन वर्ज़न ऑफ द बृहत्कथा; एल. डी. इंस्टिट्यूट ऑफ इण्डोलोजी, अहमदाबाद, १९७७.

१०. प्राकृत नेरेटिव लिटरेचर - ओरिजिन एँण्ड ग्रोथ, मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, १९८१.

११. सेवन पर्ल्स ऑफ विज्डम, क्लैरिटी पब्लिकेशन्स, बंबई, १९८४.

१२. स्टडीज़ इन अर्ली जैनिज़्म, नवरंग, नई दिल्ली, १९९२.